अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–3 सितम्बर–2022 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

● रबी फसल उत्पादन तकनीक ● रबी फसलों में समन्वीत कीट व रोग प्रबन्धन ● पुष्पोत्पादन ● जैविक एवं प्राकृतिक खेती

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)–324001

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
10 वाँ स्था
दिवस

#IFFCONanoUrea
IFFCO
इफको नैनो यूरिया
तरल
पेश है किसानों के लिए दुनिया का
पहला नैनो यूरिया!
लागत कम करने
में सहायक
मिट्टी की गुणवत्ता
को बढ़ाए
पौधों के पोषण
में सहयोगी
किसानों की आय
में सुनिश्चित वृद्धि
फसल उपज
को बढ़ाए
पारंपरिक यूरिया
से सस्ता
FOLLOW US:
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop
इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

ललित पाटीदार
(M.Sc. Horticulture)
मो. 9413023482, 9887437524
अम्बिका
मॉर्डन एग्रीकल्चर
SUMITOMO CHEMICAL
DUPONT
BAYER
BASF
We create chemistry
नर्सरी टूल्स, मल्च, स्प्रे पम्प, खाद, बीज, कीटनाशक, वर्मी कम्पोस्ट, ऑर्गेनिक खाद एवं दवाई के लिए सम्पर्क करें।
चन्द्रभागा रोड़, झालरापाटन, जिला-झालावाड़ (राज.) 326023

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–3 सितम्बर–2022 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, प्राथमिकता, निगरानी एवं मूल्यांकन

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक : DEE, Agriculture University, Kota
बैंक : ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या : 687801700345
IFSC : ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–3 सितम्बर–2022

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	गोवंश मे लम्पी स्किन / गांठदार त्वचा रोग : बचाव एंव उपचार अतुल शंकर अरोड़ा	1
2.	कलौंजी उत्पादन की उन्नत तकनीकी हरफूल मीणा, सुश्री मनोज, उदिति धाकड़ एवं राजेन्द्र कुमार यादव	2-3
3.	कैसे करे पोषक तत्वों से भरपूर चिया की उन्नत खेती अनुज कुमार एवं राम सिंह चौधरी	4-5
4.	राजमा की उन्नत खेती वर्षा गुप्ता, खजान सिंह, राजेश कुमार एवं मंजू मीणा	6-7
5.	ईसबगोल के औषधीय गुण एवं उन्नत खेती सरिता, कमला महाजनी, आर. के. बैरवा एवं विक्रम	8-10
6.	तोरिया: अंतरफसल के रूप में एक अच्छा विकल्प राजूराम चौधरी एवं अक्षय कुमार योगी	11
7.	आलू के प्रमुख कीटों का प्रबंधन कृष्णा अवतार मीना, जितेन्द्र कुमार गुप्ता एवं योगेंद्र कुमार मीना	12-13
8.	बीज की गुणवत्ता, ह्रास एवं नियंत्रण के उपाय आर. के. महावर, एस. एन. मीणा, हनुमान सिंह एवं सुभाष असवाल	14-17
9.	खाद्यान्न फसलों में बायोफोर्टिफिकेशन (जैव–संवर्धन) की उपयोगिता संध्या, मुकुल एवं मनोज कुमार	18-21
10.	जैविक खेती में समन्वित कीट प्रबंधन के सिद्धान्त एवं विधियाँ गौरांग छंगाणी, लेखा एवं सुरेश कुमार जाट	22-24
11.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक खेती की ओर बढ़ते कदम अर्जुन सिंह जाट, सुमित्रा देवी बम्बोरिया एवं बलदेव राम	25-27
12.	कृषि रसायनों का प्रभावी प्रयोग उदिति धाकड, बलदेव राम, शंकर लाल यादव एवं प्रताप सिंह	28
13.	बायोगैस : किसानों के लिए ऊर्जा का उत्तम वैकल्पिक स्त्रोत सुरेन्द्र कुमार, प्रियंका एवं सरिता	29
14.	ग्लेडियोलस की उन्नत खेती अशोक चौधरी, आशुतोष मिश्रा, प्रियंका कुमारी जाट एवं राजेश चौधरी	30-31
15.	गेंदे की खेती – एक लाभकारी व्यवसाय रिषिका चौधरी	32-34
16.	ट्राइकोडर्मा के प्रयोग की विधि एवं लाभ डी.एल. यादव एवं प्रताप सिंह	35
17.	शुद्ध घी बनाइए : मिलावट पहचानिए शकुन्तला गुप्ता एवं सौरभ माहेश्वरी	36-37

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

विगत कुछ वर्षों में भारतीय कृषि का परिदृश्य काफी तेजी से बदल रहा है। आज डिजिटल एग्रीकल्चर और स्मार्ट कृषि की और किसानों का रूझान बढ़ रहा है। वर्तमान कृषि को एक उद्यम की तरह अपनाने की आवश्यकता है। कृषकों की आय वृद्धि हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा सतत् प्रयास किये जा रहे है। परम्परागत खेती के स्थान पर फसल विविधिकरण, समन्वित कृषि प्रणाली, गौ–पालन, कुक्कुट पालन, मछली पालन, फल, सब्जी एवं मशरूम की खेती, खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन को अपनाकर किसान भाई अपनी आय को बढ़ा सकते है।

कृषि रसायनों के मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभावों के मद्देनजर, प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती को अपनाने की नितान्त आवश्यकता है। इन पद्धतियों में पशुधन की महत्ती भूमिका होती है। इन दिनों पूरे देश में लम्पी वायरस तेजी से फैल रहा है, जिससे हजारों पशुओं की जान जा चुकि है। अतः गौवंश को इस बीमारी से बचाने हेतु समन्वित प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

किसान भाइयों के लिए यह सबसे व्यस्तम समय है जब आप रबी फसलों विशेषतः गेंहूँ, जौ, धनियां, अलसी, प्याज, चना, सरसों की बुवाई व काश्त में संलग्न होगें। अतः प्रस्तुत अंक में लम्पी रोग के बचाव एवं उपचार, प्राकृतिक एवं जैविक खेती के सिद्धातों, इसबगोल, ग्लेडियोलस, चिया की खेती, कृषि रसायनों के प्रभावी प्रयोग, कलौंजी उत्पादन तकनीक, ट्राईकोडर्मा के प्रयोग की विधि आदि विषयों पर विभिन्न विषय विशेषज्ञों एवं शोधार्थियों से प्राप्त आलेखों का समावेश किया गया है।

मैं पत्रिका के सभी लेखकगण, सम्पादक मण्डल एवं सलाहकार मण्डल के सदस्यों को इस अंक के प्रकाशन की हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाऐं प्रेषित करता हूँ।

(एस.के. जैन)

गोवंश मे लम्पी स्किन / गांठदार त्वचा रोग : बचाव एंव उपचार

अतुल शंकर अरोड़ा
पशु विज्ञान केन्द्र, कोटा

लम्पी स्किन/गांठदार त्वचा रोग मुख्यतः गोवंश एवं भैंस वंश में होने वाला एक वायरस जनित रोग है। जो कि पॉक्स विरिडी फेमेंली के केप्रीपॉक्स वायरस से होता है।

रोग का कारण : यह रोग गर्म आर्द जलावायु में रक्त चूसने वाले कीटो/कीड़ों जैसे मक्खी, मच्छर एवं टिक्स आदि से फैलता है साथ ही संक्रमित चारा एवं पानी भी इस रोग का कारण हो सकते है। यह रोग संक्रमित पशुओ की लार एवं पशु से निकलने वाले विभिन्न स्त्रावों के माध्यम से भी फैलता है।

रोगग्रस्त पशु में लक्षण : रोगग्रस्त पशु के शरीर पर कुछ या कई कठोर एवं दर्दनाक गांठे दिखाई देती है विशेषकर सिर, गर्दन, थनो और जननांगो के आस–पास दो से पांच सेंटीमीटर व्यास की गांठे हो जाती है। धीरे–धीरे गांठे बड़ी होने लगती है, ओर यह घाव में बदल जाती है। साथ ही तेज बुखार भी आता है। रोग ग्रस्त पशु का उपचार यदि समय रहते ना किया जाए तो घावो में मवाद बन सकती है। और मक्खियों के कारण कीड़े भी पड़ सकते है और जीवाणुओ द्वारा द्वितीयक संक्रमण होने की संभावना रहती है। यह घाव कई दिनो या महीनो तक बने रह सकते है। क्षेत्रीय लिम्फ नोडस में सूजन आ जाती है। पशु चारा पानी खाना कम कर देता है या बंद कर देता है और पशु में कमजोरी के साथ ही वजन भी घट जाता है। दुधारू पशुओ में दुग्ध उत्पादन भी कम हो जाता है। कभी–कभी पशु के गलकम्बल, छाती एवं पेरों में सूजन आ जाती है तथा कभी–कभी पशुओ में लंगडापन, निमोनिया, गर्भपात और बांझपन भी हो सकता है। पशु में इस रोग के लक्षणों को देखते ही उपचार करवाने पर पशु जल्दी ही ठीक हो जाता है। पशुओ में इस तरह के लक्षण प्रकट होते ही तुरंत नजदीकी पशुचिकित्सालय में सूचना अवश्य देनी चाहिए।

रोग का संचरण : पशुओ में इस रोग के संक्रमण होने पर उसे अन्य स्वस्थ पशुओ से अलग रखना आवश्यक है अन्यथा स्वस्थ पशुओ में संक्रमण फैलने की संभावना रहती है। साथ ही उनकी देखभाल करने वाला भी अलग होना आवश्यक है। यह बीमारी एक से दूसरे राज्यों एवं जिलो में भी संक्रमित पशु के आवागमन होने पर फैल जाती है। रक्त चूसने वाले कीट/कीड़ो जैसे मक्खी, मच्छर, टिक्स एवं संक्रमित चारा, पानी एवं संक्रमित पशु के सम्पर्क से अन्य स्वस्थ पशु में फैल सकती है।

रोग की जांच : रोगग्रस्त पशु के उपर की गांठो और रक्त के नमूनो को प्रयोगशाला में जांच करवाकर इस रोग का पता लगाया जा सकता है।

उपचार : वायरस जनित रोग होने के कारण इसका कोई विशेष उपचार नहीं है लेकिन द्वितीयक संक्रमण से पशु को बचाने के लिए एंटीबायोटिक्स, एंटीइन्फलेटरी, एंटी हिस्टामिनिक एवं विटामिन व मिनरल देने चाहिए। साथ ही पशु को संतुलित आहार देना बहुत ही आवश्यक है जिससे कि रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे। त्वचा के घावों को एंटीसेप्टिक से साफ करना चाहिए। प्रारंभिक लक्षणों को देखते ही यदि उपचार शुरू किया जाए तो पशु जल्दी ही रोगमुक्त हो सकता है। वायरस जनित होने के कारण टीकाकरण ही इसकी रोकथाम व नियंत्रण का प्रभावी तरीका है।

बचाव एवं रोकथाम : इस रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखते ही उसे स्वस्थ पशुओ से अलग कर देना चाहिए। एवं उपचार के लिए नजदीकी पशुचिकित्सा संस्था से सम्पर्क करना चाहिए। रोगग्रस्त पशु की चारे, दाने एवं पानी की व्यवस्था अलग करनी चाहिए। रोगग्रस्त क्षेत्र में पशुओ की आवाजाही रोकना आवश्यक है। पशुशाला में मक्खी, मच्छर के प्रकोप को कम करने के लिए नीम के पत्तों को जलाकर धुंआ करना चाहिए। पशुशाला की दीवारो की दरारों एवं छेदो में चूना भरना चाहिए या कपूर की गोलिया रखनी चाहिए जिससे मक्खी, मच्छर दूर रहेगें। पशुशाला को कीटाणुरहित करने के लिए सोडियम हाइपोक्लोराइट का दो से तीन प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए। मृत पशुओ के सम्पर्क में आ रही वस्तुओं एवं स्थान को फिनाइल या लाल दवा आदि से कीटाणु रहित करना चाहिए। इस रोग से ग्रसित पशु की मृत्यु उपरांत गांव के बाहर पांच से छह फीट गहरे गड्डे में दबाकर चूना व नमक भी साथ में डालना चाहिए। पशुशाला में चिचड मारने की दवाई (साइपरमेंथ्रिन) एवं मक्खी भगाने की दवा (फिनाइल) का छिडकाव करना चाहिए जिससे रोग के संचरण का खतरा कम रहेगा। रोगग्रस्त पशु की देखभाल करने वाले व्यक्ति को अपने हाथ, पांवों को धोते रहने चाहिए वैसे यह रोग पशुओ से मनुष्यो में नहीं होता है।

रोगग्रस्त पशु को पौष्टिक आहार के साथ–साथ साफ पानी पिलाना चाहिए। रोगग्रस्त पशु की जांच और उपचार में उपयोग हुए सामग्री को खुले में नहीं फेंकना चाहिए। पशुओ के प्रबंधन पर उचित ध्यान देकर भी इस रोग को फैलने से रोका जा सकता है। इस बीमारी से बचाव के लिए टीके का निर्माण अनुसंधान संस्थानों में प्रगति पर है और जल्दी ही टीका उपलब्ध होने की संभावना है। वर्तमान में स्वस्थ पशुओ को इस बीमारी से बचाव के लिए गोटफॉक्स का टीका चार माह से ऊपर के स्वस्थ पशुओ में लगाकर पशुओ को इस बीमारी से बचाया जा सकता है। इस रोग की रोकथाम के लिए विभिन्न माध्यमो से पशुपालको को जागरूक करने के लिए अभियान चलाना भी आवश्यक है।

कलौंजी उत्पादन की उन्नत तकनीकी

हरफूल मीणा, सुश्री मनोज, उदिति धाकड़ एवं राजेन्द्र कुमार यादव

कृषि अनुसंधान केन्द एवं कृषि महाविधालय, उम्मेदगंज, कोटा

भारत के कुछ स्थानों में कलौंजी को काला जीरा के नाम से भी जाना जाता है। कलौंजी एक गौण बीजीय मसाला है, जिसका बीज काले रंग का होता है।अचार एवं अन्य खाद्य पदार्थो को मसालेदार एवं तीखा बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें कई औषधीय गुण पाये जाते है। इसके तेल में मौजूद नाइजेलोन तत्व की उपस्थिति के कारण खाँसी एवं दमा के रोगों में लाभकारी होता है। इसके बीज को ऊनी कपडों के तहों में रखते है, जिससे कीडे नहीं लगते हैं। कलौंजी में समस्त औषधीय गुण विद्यमान रहते है इसलिए इसे रामबाण की संज्ञा दी गयी है।

जलवायु : यह ठंड़े जलवायु की फसल है। उत्तरी भारत में इसकी बुवाई रबी की फसल के रुप में की जाती है। प्रारम्भ में वानस्पतिक वृद्धि के लिए ठंड़ा मौसम अनुकुल होता है, जबकि बीज परिपक्व होते समय शुष्क एवं अपेक्षाकृत गर्म मौसम उपयुक्त होता है। यह फसल पाले के प्रति संवेदनशील होती है।

मृदा एवं भूमि की तैयारी : कलौंजी की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, लेकिन पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ वाली बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी. एच. मान 6.5 से 7.5 तक हो, सबसे उत्तम होती है। मिट्टी भूरभूरी एवं उचित जल निकास वाली होनी चाहिए एवं खेत खरपतवार, कंकर–पत्थर आदि से मुक्त होना चाहिए। खेत की तैयारी करने के लिए एक गहरी जुताई तथा दो से तीन हल्की जुताई करके पाटा लगाना चाहिए। समतल खेत में बीज जमाव एक समान होता है एवं फसल भी अच्छी होती है। मिट्टी में दीमक की समस्या होने पर अन्तिम जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत की 25 किलोग्राम अथवा फेनवेलेरेट पाउडर 20 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से खेत में एक समान बुरककर मिला देना चाहिए।

उन्नत किस्में : अजमेर कलौंजी 1, अजमेर कलौंजी 20, आजाद कलौंजी, पंत कृष्णा, एन. एस.32, एन.एस. 44

बीजदर एवं बीजोपचार: कतार विधि द्वारा बुवाई के लिए 7 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टर उपयुक्त है तथा बाविस्टिन फंफूद नाशी द्वारा 2.0 ग्राम अथवा ट्राईकोडर्मा 6–8 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। बीजोपचार सर्वप्रथम कवकनाशी उसके बाद कीटनाशी एवं अन्त में जीवाणुयुक्त दवाई या जीवाणु खाद से करना चाहिए।

बुवाई का समय : रबी की फसल के लिए उत्तरी भारत में बुवाई मध्य अक्टुबर–मध्य नवम्बर के दौरान में करनी चाहिए।

बुवाई की विधियां

छिटकवाँ विधि: इस विधि से बुवाई में बीजों को बनायी गयी समतल क्यारियों में एक समान छिटक देना चाहिए एवं इनके ऊपर दंताली की सहायता से मिट्टी की हल्की परत चढा देनी चाहिए।

कतार विधि : इस विधि में बीज की बुवाई 30 से.मी. दूर कतारों में एवं पौधे से पौधे की दूरी 10–15 से.मी. रखनी चाहिए। बुवाई के समय हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज की गहराई 2 से.मी. से ज्यादा न हो अन्यथा बीज के अंकुरण पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।

बुवाई की कतार विधि

खाद एवं उर्वरक : बुवाई के लगभग एक माह पूर्व अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद 10 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से खेत में समान रुप से मिला देनी चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग हमेशा मिट्टी की जाँच के परिणाम के अनुसार करना चाहिए। एक सामान्य उर्वरकता वाली भूमि में 40 किलोग्राम नत्रजन, 20 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिए। अन्तिम जुताई के समय नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरेस एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। शेष नत्रजन को दो बराबर भागों में बाँटकर बुवाई के 30–35 एवं 60–65 दिनों की खड़ी फसल में सिचाई के साथ देने से पौधों की अच्छी वृद्धि एवं गुणवता उत्पादन प्राप्त होता है।

जल प्रबंधन : कलौंजी की खेती सिंचित एवं असिंचित दोनों ही अवस्थाओं में की जा सकती है, कलौंजी की बुवाई के पश्चात मौसम तथा मृदा की संरचना को ध्यान में रखते हुए 15–20 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फूल बनते समय एवं बीज के विकसित होते समय मृदा में उचित नमी होनी चाहिए। कलौंजी की अच्छी फसल पैदा करने के लिए कुल 2 से 3 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

पुष्प एवं बीज विकसित होने की अवस्था

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण : जब कलौंजी की फसल 30–35 दिनों की हो जाये तो पहली निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। इसी समय कतार में से अतिरिक्त पौधों को निकाल देना चाहिए ताकि फसल की वृद्धि एवं विकास सही तरह हो सके। दूसरी निराई–गुड़ाई 60–70 दिनों की फसल में करनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए तत्व का जमाव से पूर्व 500–600 लीटर पानी में घोलकर मिट्टी पर छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख कीट एवं उनका नियंत्रण

माहू (एफिड) : इन छोटे आकार के हल्के हरे रंग से गहरे कत्थई या काले रंग वाले कीटों का प्रकोप समान्यताः जनवरी से मार्च के बीच पाया जाता है। प्रकोप की उग्र अवस्था में ये कीट पूरी फसल को ढक लेते है एवं पत्तियों, फूलों एवं केप्सूल से रस चूसकर पौधों को धीरे–धीरे समाप्त कर देते है। पौधे का रस चूसने के कारण पौधे पीले पड़ जाते है, जिससे फसल की पैदावार में भारी कमी आ जाती है। इस कीट के प्रौढ व शिशु दोनों ही पौधों को क्षति पहुंचाते है। उचित समय पर फसलों की बुवाई करने से इस कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है। कीट के प्रारम्भिक संक्रमण की अवस्था में जैविक कीटनाशक जैसे नीम तेल 1–2 प्रतिशत, करंज तेल 1–2 प्रतिशत, नीम बीज अर्क 2–5 प्रतिशत का उपयोग काफी लाभदायक रहता है। फसल मित्र एवं परभक्षी कीट जैसे कॉक्सीनेला, क्राइसोपा इत्यादि को संरक्षण देना चाहिए जिससे ये कीट प्राकृतिक रुप से नुकसान पहुँचाने वाले नाशीजीवों को खाकर इनकी संख्या को नियंत्रित कर सके। कीटों की संख्या ज्यादा होने पर रसायनिक कीटनाशक जैसे डाइमिथोएट (1.0 मि.ली./ली.), थायोमेथोक्साम (0.5 ग्राम/ली.) एवं इमिडाक्लोप्रिड (0.5 मि.ली. प्रति लीटर) का प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

कटुवा इल्ली : यह पौधों को जमीन की सतह से काट देती है, जिससे पूरा पौधा नष्ट हो जाता है। इसके नियत्रंण के लिये फोरेट 10 जी. को 10–12 किलों प्रति हैक्टेयर या फेनवेलरेट पाउडर 25 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से बीज बोने के साथ या बाद में पौधों के पास बुरकना चाहिए।

दीमक : यह कलौंजी को सबसे अधिक हानि पहुँचाते है। इस कीट के अधिक प्रकोप की अवस्था में खेत में फसल को काफी नुकसान होता है। दीमक पौधों की जड़ों तथा तने को काट डालती है, जिससे पौधे अपरिपक्व अवस्था में ही सूख कर गिर जाते है। इसके प्रकोप से उपज में भारी कमी आ जाती है। इसके जैविक नियत्रंण के लिये नीम की खली 100–125 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में डालना चाहिए। फसल के दौरान प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरपाइरीफोस 20 ई.सी. का 4 लीटर दवा प्रति हैक्टेयर की दर से रेत में मिलाकर मृदा में डालकर सिंचाई करनी चाहिए या सिंचाई के जल के साथ देने से दीमक से निजात मिलता है।

फल भेदक : इस कीट का प्रकोप फल बनने की प्रारम्भिक अवस्था में अधिक पाया जाता है। यह कीट फल (केप्सूल) में छेद करके अपरिपक्व बीजों को खा जाता है, इसके लिए डाईमिथोएट 0.01 प्रतिशत का घोल बनाकर 10–12 दिनों के अन्तराल पर 2–3 बार छिड़काव करने से इस कीट को प्रभावी रुपसे नियत्रित किया जा सकता है।

प्रमुख बिमारियाँ एवं उनका नियंत्रण

जड़ सड़न : राइजोक्टोनिया एवं फ्यूजेरियम द्वारा सयुंक्त रुप से उत्पन्न कि जाने वाली इस बीमारी में रोगग्रस्त पौधे पहले तो पीले दिखते है एवं बाद में पतियाँ धीरे धीरे सूख जाती है और पौधा अन्ततः मर जाता है। रोग से बचाव के लिए बीज को ट्राइकोडर्मा पाउडर द्वारा 4 से 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बोना फायदेमंद रहता है। इसके अलावा कार्बन्डेजियम या कैप्टान 2 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित कर भी बोया जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई करके खेत को खुला छोड़ देना एवं उचित फसल चक्र अपनाना भी एक अच्छा उपाय है।

फसल कटाई : जब फसल परिपक्व हो जाये तभी फसल की कटाई करनी चाहिए। सामान्यतया फसल 135–150 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाती है। बीज संपुट ज्यादा सूख जाने पर फट जाते है, जिससे बीज खेत में बिखर जाते है। अतः फसल की कटाई समय पर कर लेनी चाहिए। इसके लिए पौधों को हाथ से या कटाई मशीन से काट लेना चाहिए। इसके बाद छोटे–छोटे बण्डल बाँध कर इन्हें छायादार मड़ाई फर्श पर फैलाकर उलटते रहना चाहिए, जिससे अच्छी प्रकार सूख जाए। बीज को बीजीय मसाला घेसर द्वारा अलग कर लेना चाहिए एवं बीजों को सूखाकर बोरियों या उपयुक्त पैकिट या थैले में भरकर रखना चाहिए।

कलौंजी के बीज संपुट

उपज : कलौंजी की खेती में उन्नत तकनीकियाँ अपनाकर ली गई फसल से औसतन 8 से 10 क्विंटल उपज प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

कैसे करे पोषक तत्वों से भरपूर चिया की उन्नत खेती

अनुज कुमार एवं राम सिंह चौधरी
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज कोटा

परिचय : चिया *(साल्विया हिस्पैनिका एल.)* लैमियासी परिवार का एक पौधा है, जिसकी उत्पत्ति मैक्सिको और ग्वाटेमाला के पहाड़ी क्षेत्रों में हुई है। चिया की खेती ऑस्ट्रेलिया, बोलीविया, कोलंबिया, ग्वाटेमाला, मैक्सिको, पेरू और अर्जेंटीना में की जाती है। भारत में चिया की खेती मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में शुरू की गई थी। चिया का पौधा 1.0 से 1.5 मीटर लंबा होता है और इसके पत्ते लगभग 1.5 से 3.0 इंच लंबे और 1 से 2 इंच चौड़े होते हैं, जो तने पर एक दूसरे के विपरीत व्यवस्थित होते हैं। चिया में सफेद या बैंगनी रंग के छोटे फूल (3 से 4 मिमी) होते हैं, जो स्व–परागण में योगदान करते हैं। बीज काले, भूरे और सफेद से काले धब्बों के साथ रंग में भिन्न होता है और 1 से 2 मिमी मोटाई के आकार में अंडाकार होता है। काले बीजों की अपेक्षा सफेद बीज में तेल की मात्रा अधिक पाई जाती है।

चिया की उपयोगिता

चिया बीज देखने में बहुत छोटे होते है, परंतु स्वास्थ्य और पौष्टिकता का पूरा खजाना इनमें समाहित है। इसके बीज में 30-35% उच्च गुणवत्ता वाला तेल पाया जाता है जो की, ओमेगा–3 और ओमेगा–6 फेटी एसिड का बेहतरीन (60% से अधिक) स्त्रोत है. यह तेल सामान्य स्वास्थ्य और ह्रदय के लिए अति उत्तम पाया गया है. यही नहीं इसके बीज में अधिक मात्रा में प्रोटीन (20-22%), खाने योग्य रेशा (लगभग 40%) तथा एंटी ओक्सिडेंट, खनिज लवण (कैल्शियम,फॉस्फोरस,पोटैशियम) और विटामिन्स (नियासिन,राइबोफ्लेविन और थायमिन) विद्यमान होते है। चिया में नियासिन विटामिन की मात्रा मक्का, सोयाबीन और चावल से अधिक होती है। चिया बीज में दूध की तुलना में 6 गुना अधिक कैल्शियम, 11 गुना अधिक फॉस्फोरस व 4 गुना अधिक पोटैशियम पाया गया है। चिया बीज में अपने वजन से 12 गुना से अधिक मात्रा में पानी सोखने की क्षमता होती है जिससे इसे खाद्य उद्योग के लिए अधिक उपयोगी माना जा रहा है। चिया बीज से बने आहार और व्यंजन शक्ति महत्वपूर्ण स्त्रोत माने जाते है। बीज का इस्तेमाल खाद्यान्न (रोटी, दलिया या हल्वा) या बीज अंकुरित कर सलाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। दूध या छाछ के साथ इसका पाउडर मिलाकर पौष्टिक पेय केरूप में भी इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है। चिया के हरे ताजे या सूखे पत्तों से निर्मित चाय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी बताई जाती है।

इस प्रकार चिया के बीज में प्रोटीन और उच्च गुणवत्ता का वसा,महत्वपूर्ण विटामिन्स और खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। भोजन के साथ–साथ चिया बीज के सेवन से भारत के बच्चो में तेजी से फैल रही कुपोषण की समस्या से निजात मिल सकती है। इसके अलावा सभी वर्ग के लोगो के स्वास्थ्य के लिए इसका सेवन फायदेमंद रहता है।

चिया के ओषधीय गुण

चिया के बीज में प्रोटीन, वसा, खनिज लवण और विटामिन्स प्रचुर मात्रा में विद्यमान होती है जिसके कारण इसके सेवन से मांसपेशियां, मस्तिष्क कोशिकाएं और तंत्रिका तंत्र मजबूत होता है। चिया के बीजों में एंटी ऑक्सिडेंट्स पर्याप्त मात्रा में होते है, जो शरीर से फ्री रैडिकल्स को बाहर निकलने में मदद करता है, जिससे ह्रदय रोग और कैंसर रोग से बचा जा सकता है। चिया के बीजों में ओमेगा–3 और ओमेगा–6 फैटी एसिड पाया जाता है, जो ह्रदय रोग और कोलेस्ट्रॉल की समस्याओं को दूर करने में मददगार साबित होता है। चिया के बीजों के नियमित सेवन करने से शरीर में सूजन की समस्या से निजात मिलती है। चिया के बीज भूख शांत करने और वजन घटाने में कारगर साबित हो रहे है। चिया के बीज का सेवन करने से शरीर में 18% कैल्शियम की कमीं पूरी होती है जो कि, दांत और हड्डियों को मजबूती प्रदान करने में मददगार होती है। शरीर की त्वचा को कांतिमय बनाने के लिए इसका नियमित सेवन अत्यंत लाभकारी बताया जा रहा है। पाचन तंत्र को सुधारने और मधुमेह रोगियों के लिए भी उपयोगी खाद्य है।

जलवायु व मिट्टी

चिया को विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में उगाया जा सकता है, जो उष्णकटिबंधीय तटीय रेगिस्तान से लेकर उष्णकटिबंधीय वर्षा वन क्षेत्रों में 8 से 2,200 मीटर की ऊंचाई पर हैं। चिया एक शीतकालीन फूल (लघु–दिन फूल वाला पौधा) पौधा है जो संवेदनशील है ठंढ के लिए, इसलिए यह दिसंबर और जनवरी के दौरान ठंढ से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है क्योंकि यह चिया में फूल और बीज भरने की अवधि है।

चिया पौधे की जीवन चक्र अवधि 120 से 150 दिनों के बीच होती है। चिया कम रखरखाव वाली फसल है जो मध्यम उपजाऊ मिट्टी में भी पनप सकती है। इसकी खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, लेकिन रेतीली दोमट मिट्टी अच्छी उपज के लिए सबसे उपयुक्त होती है। चिया अम्लीय मिट्टी को काफी हद तक सहन कर सकती है लेकिन अत्यधिक लवणीय और क्षारीय मिट्टी में इसकी उपज कम हो जाती है। चिया की खेती के लिए खेत की तैयारी उसी तरह की जाती है, जैसे ल्यूसर्न की फसल के लिए, जिसके लिए गहरी जुताई (भारी मिट्टी में), उसके बाद हैरोइंग और प्लांकिंग पर्याप्त होती है।

भूमि की आवश्यकता

चिया की खेती सभी प्रकार की उपजाऊ और कम उर्वर भूमिओं में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस फसल से अधिकतम उपज और लाभ लेने की लिए अग्र प्रस्तुत वैज्ञानिक तरीके से खेती करना चाहिए।

बुवाई का समय व बीजदर

प्रकाश सवेंदी फसल होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में चिया के पौधों में पुष्पन और बीज निर्माण बहुत कम होता है। पौधो की बेहतर बढ़वार और अधिक उपज के लिए चिया फसल की बुआई वर्षा ऋतु–खरीफ में जून–जुलाई के पश्चात और शरद ऋतु–रबी में अक्टूबर–नवम्बर में करना श्रेष्ठतम पाया गया है। चिया बीज के लिए मध्यम तापमान की जरुरत होती है, मध्यप्रदेश और राजस्थान का तापमान इस फसल के लिए सबसे श्रेष्ठ है.

नर्सरी की तैयारी

अच्छी प्रकार से तैयार खेत में वांक्षित आकार की उठी हुई क्यारी बना लें। चिया के बीज आकर में छोटे होते है, इसलिए क्यारी की मिट्टी भुरभरी और समतल कर लेना चाहिए। चिया के 100 ग्राम बीज को 1 किलो रेत में रेत या सुखी मिट्टी के साथ मिलाकर तैयार क्यारी में एक साथ बोने के उपरांत बारीक वर्मी–कम्पोस्ट या मिट्टी से ढक कर हल्की सिचाई करना चाहिए। क्यारी में नियमित रूप से झारे की मदद से हल्की सिचाई करते रहें, जिससे क्यारी की मिट्टी नम बनी रहें।

मुख्य खेत की तैयारी और पौधरोपण

पौध रोपण हेतु खेत की भली भांति साफ सफाई करने के पश्चात जुताई कर भुरभुरा और समतल कर लेना चाहिए, खेत की अंतिम जुताई के समय नीचे बताए खाद जैसे की, केंचुआ का खाद/ वर्मी खाद, पौधे के लिए पोषक तत्व प्रदान करता है, नीम की खली, जमीन में उपस्थित कीट कों को मारता है, जिप्सम पाउडर, जमीन को भुरभुरा रखने में मदद करता है। ट्राईकोडर्मा एक फफूंद नाशक पाउडर है, जो जमीन में उपस्थित हानिकारक फफूंद को मारने में उपयोगी होता है। ये सभी खाद और उर्वरक एक साथ खेत में फैलाकर मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए। अब खेत में 30 सेमी. की दूरी पर कतारें बनाकर पौध से पौध 5 सेमी. की दूरी रखते हुए पौधे रोपना चाहिए, शीत ऋतु–रबी में कतार से कतार 3 सेमी और पौधे से पौधे के मध्य 20 सेमी की दूरी रखना उचित पाया गया है क्योंकि ठण्ड के मौसम में पौध बढ़वार कम होती है। पौध रोपण के तुरंत बाद खेत में हल्की सिचाई करना अनिवार्य होता है ताकि पौधे सुखे नहीं.

निराई–गुड़ाई

फसल को खरपतवार प्रकोप से बचाने के लिए खेत में 2–3 बार हाथ की मदद से निराई–गुड़ाई करना चाहिए। खेत में खाली स्थानों में पौध रोपण का कार्य भी रोपण के 10–15 दिन केअन्दर संपन्न कर लेना चाहिए।

सिंचाई

फसल की जरुरत अनुसार सिंचाई देना चाहिए।

खाद एवं रासायनिक उर्वरक

खाद एवं उर्वरक की मात्रा खेत की मिट्टी परीक्षण करवाकर ही देनी चाहिए। चिया की अच्छी पैदावार के लिए 10 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद डालना चाहिए। इसके अतिरिक्त सामान्य उर्वरता वाली भूमि के लिए प्रति हेक्टेयर 40: 20: 15 NPK का तत्व के रूप में प्रयोग किया जाता है। नाइट्रोजन की मात्रा दो बराबर भागो में बुआई से 30 व 60 दिन के अंतर पर खड़ी फसल में सिंचाई के साथ डालना चाहिए। NPK का तत्व के लिए नीम खली और नीम पाउडर का प्रयोग कर सकते है, साथ ही साथ चिया बीज की आर्गेनिक खेती के लिए नीम खली और नीम आयल सबसे उत्तम है।

फसल कटाई

फसल तैयार होने में 90 से 120 दिन लगते हैं। पौध रोपण के 40–50 दिन के अन्दर फसल में पुष्पन प्रारंभ हो जाता है। पुष्पन के 25–30 दिन में बीज पककर तैयार हो जाते है। फसल पकते समय पौधे और बालिया पीली पड़ने लगती है। पकने पर फसल की कटाई–गहाई कर दानों की साफ–सफाई कर उन्हें सुखाकर बाजार में बेच दिया जाता है अथवा बेहतर बाजार भाव की प्रतीक्षा में उपज को भंडारित कर लिया जाता है।

उपज

मौसम और प्रबंधन के आधार पर चिया फसल से प्रति एकड़ 600 से 700 किग्रा. उपज प्राप्त हो जाती है।

राजमा की उन्नत खेती

वर्षा गुप्ता, खजान सिंह, राजेश कुमार एवं मंजू मीणा
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

राजमा एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। राजमा देश के उत्तरी पहाड़ी राज्यों यथा जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड में खरीफ फसल तथा मध्य भारत में रबी फसल के रूप में उगाई जाती है। इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र व आंध्रप्रदेश में भी इसके क्षेत्र में इजाफा हो रहा है। राजमा भारत सहित दुनिया के कई हिस्सों में खाने में प्रयोग किया जाता है। राजमा–चावल की जोड़ी से तो सभी वाकिफ हैं, इसे अधिकतर लोग चाव से खाते है। राजमा खाने में स्वादिष्ट होने के साथ साथ स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक होता है। राजमा प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत है, इसमें 25 प्रतिशत तक प्रोटीन पायी जाती है, इसके अतिरिक्त राजमा में अनेक एंटी ऑक्सीडेंट, फाइबर, आयरन, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, सोडियम जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व पाए जाते है। राजमा में मौजूद घुलनशील फाइबर शरीर में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा को कम करने में मदद करता है, जो शुगर लेवल को नियंत्रित रखने में सहायता करता है तथा पाचन क्रिया सुधारने में मदद करता है। राजमा को आहार में शामिल करके वजन में कमी तथा शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बना सकते है। राजमा के घुलनशील फाइबर आमाशय में जेल जैसा पदार्थ बनाकर खराब कोलेस्ट्रॉल स्तर को कम करता है तथा अच्छा कोलेस्ट्रॉल स्तर को बढ़ाता है तथा शरीर द्वारा कोलेस्ट्रॉल के पुनः अवशोषण को रोकता है। इसके अतिरिक्त राजमा पोटेशियम का भी अच्छा स्त्रोत होता है जो कि रक्त वाहिकाओं को फैलाता है, फलस्वरुप रक्तचाप को कम करने में मददगार होता है। राजमा दिखने में किडनी के समान होता है, अतः इसे किडनी बीन्स के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। राजमा लाल रंग के अतिरिक्त क्रीमी, सफेद, बैंगनी, काले व चितकबरे रंग के होते है। राजमा के उत्पादन की उन्नत तकनीकों का प्रयोग कर इसकी पैदावार में बढ़ोतरी की जा सकती है।

उन्नत प्रजातियां

कोटा राजमा 1: मध्यम पकाव अवधि (100–105 दिन) वाली किस्म की औसत उपज 16–18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। दाने मध्यम मोटे, चितकबरे भूरे छिलके युक्त, पौधा छोटा, अर्ध फैलाव, परिमित वृद्धि, फसल आड़ी गिरने की प्रतिरोधी, उर्वरक व सिंचाई के लिए अनुक्रियाशील है। कोणीय पर्ण चित्ती रोग व श्याम वर्ण रोग के लिए प्रतिरोधी तथा उखटा, बीन कश्वमन मोजेक विषाणु व अल्टर्नेरिआ पत्ती धब्बा रोग के प्रति सहनशील प्रजाति है। चेंपा, सफेद मक्खी, फली छेदक व पर्ण फुदका कीट का प्रकोप कम होता है।

पी डी आर 14 (उदय): इस किस्म के पौधे झाड़ीनुमा, फलियां हरी तथा फूलों का रंग सफेद होता है । पौधों की ऊंचाई 40 से 50 सेमी, 115–120 दिन में पककर 12 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है इसके दाने चित्तीदार तथा 100 दानों का वजन 38–40 ग्राम होता है।

एच यू आर 15: इसके दानो का रंग सफेद तथा 100 दानों का वजन 35–38 ग्राम होता है। 108–110 दिन में फसल पककर सिंचित क्षेत्रों में 18 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

आई पी आर 98–3–1 (अरुण): सुर्ख लाल रंग के दानों वाली किस्म 120–125 दिन में पक कर 16 से 18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। यह किस्म अपरिमित वृद्धि वाली एवं तंतु युक्त होती है। यह सेम कॉमन किर्मीर विषाणु रोग के प्रति सहनशील पाई गई है।

एच. यू. आर. 136 : यह किस्म 105–107 दिनों में पककर सिंचित क्षेत्र में 14–16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके दाने का रंग गहरा लाल होता है तथा 100 दानों का भार 44–45 ग्राम होता है।

वी. एल. 63 : यह किस्म 110 –115 दिनों में पककर अच्छे फसल प्रबंध क्षेत्र में 20 –22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है स इसके दाने बादामी तथा 100 दानों का भार 35 – 38 ग्राम होता है।

उत्पादन की उन्नत तकनीक

सामयिक बुवाई के साथ, पौधों की पर्याप्त संख्या, कवकनाशी व राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार, उर्वरक, सिंचाई व खरपतवारों का उचित प्रबंधन द्वारा उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

जलवायु: राजमा की अच्छी फसल के लिए शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु उचित मानी गयी है। फसल की वृद्धि के लिए 10 से 27 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान अनुकूल है। 30 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक तापमान होने पर फूलों के झड़ने की समस्या रहती है और 5 डिग्री से कम तापमान रहने पर भी फूलों, फलियों व शाखाओं को नुकसान होता है। यह फसल पाला एवं जल भराव के प्रति संवेदनशील होती है।

भूमि का चुनाव एवं तैयारी: राजमा की खेती के लिए मध्यम दोमट भूमि उपयुक्त रहती है। मिटटी का पीएच मान 6.5 से 7.5 होना चाहिए। अच्छे अंकुरण के लिए खेत की 3–4 जुताई आवश्यक है ताकि भूमि भुरभुरी हो जाये। पानी के निकास का समुचित प्रबंधन करना भी आवश्यक है।

भूमि उपचार: भूमिगत कीड़ों व दीमक से फसल की सुरक्षा के लिए खेत की अंतिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व भूमि में मिलाना चाहिए।

बीजोपचार: बुवाई से पूर्व एक ग्राम कार्बनडेजिम या 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना आवश्यक है।

बुवाई का समय: राजमा की बुवाई मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक करनी चाहिए। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है।

बीज दर: राजमा की फसल हेतु तीन लाख तेतीस हजार पौधे प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है, इस हेतु राजमा का 100 से 125 किलो बीज की बुवाई करनी चाहिए।

बुवाई की विधि व गहराई : राजमा की बुवाई हेतु कतार से कतार की दूरी 30–40 सेमी एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी तथा बीज 5–6 सेमी गहराई पर बुवाई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : राजमा की अधिक उपज लेने हेतु गोबर की खाद 7–8 टन प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से 2–3 सप्ताह पूर्व भूमि में मिलनी चाहिए। राजमा की फसल में 120 किग्रा नत्रजन, 60 किग्रा फॉस्फोरस, 40 किग्रा पोटाश, 20 किग्रा गंधक एवं 20 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज के नीचे कतारों में डालनी चाहिए, शेष आधी नत्रजन की मात्रा बुवाई के 25 से 35 दिन बाद पहली सिंचाई के साथ भुरकनी चाहिए। खड़ी फसल में 2 प्रतिशत यूरिया का पर्णीय छिड़काव बुवाई के 45 दिन बाद फूल आने से पहले तथा बुवाई के 70 दिन बाद फलियां बनते समय करने से उपज में बढ़ोतरी होती है।

सिंचाई : पहली सिंचाई बुवाई के 25 से 30 दिन बाद शाखा बनते समय करनी चाहिए। दूसरी सिंचाई फूल आते समय तथा तीसरी सिंचाई दाना बनते समय करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : राजमा की फसल में एक से दो निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई के उपरांत 30 से 35 दिन की फसल में पहली निराई गुड़ाई करनी चाहिए। गुड़ाई के समय तने पर हल्की मिटटी चढ़ाना चाहिए, जिससे पौधों को सहारा मिल सके तथा इसी समय छटाई कर के पौधों के बीच की दूरी भी सिफारिश अनुसार रखनी चाहिए। आवश्यकतानुसार दूसरी निराई गुड़ाई करनी चाहिए। खरपतवारों की अधिक समस्या होने पर अंकुरण पूर्व पेन्डीमिथालीन 30 ई.सी. 1 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर 600 लीटर पानी में घोल कर या पेन्डीमिथालीन 30 ई.सी. + इमेजीथापायर 2 ई.सी. (मिश्रित उत्पाद) 0.75 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर या बुवाई के 20–30 दिन पश्चात् इमेजीथापायर 10 एस. एल. 50 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

सफेद मक्खी, मोयला एवं तेला : इसकी रोकथाम के लिए डाइमिथोएट 30 ई.सी. 875 मिली या एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

फली छेदक : इस कीट की रोकथाम हेतु डॉईमिथोऐट एक लीटर को 600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

जड़ गलन एवं कोलर रॉट : इसके नियंत्रण हेतु कार्बेन्डेजिम 1 ग्राम या थाइरम 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए।

सफेद तना गलन : इसके नियंत्रण हेतु फूल आने के समय कार्बेन्डेजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। रोगग्रस्त खेत में 2–3 वर्ष तक राजमा, मटर, सरसों, धनिया, चना व बरसीम नहीं बोना चाहिए।

पाले से बचाव : राजमा की फसल पाले के प्रति संवेदनशील होती है, अतः जब सर्दियों में तापमान 5 डिग्री सेंटीग्रेड से नीचे आने की सम्भावना हो उस समय खेत में सिंचाई कर देनी चाहिये अथवा सल्फ्यूरिक अम्ल की एक मिली मात्रा को एक लीटर पानी की दर से मिलाकर छिड़काव करने से फसल का पाले से बचाव होता है।

कटाई एवं गहाई : फसल पकने के बाद सही समय पर कटाई करनी चाहिए, अन्यथा फलियां चटक कर दाने जमीन पर गिर जाते है कटाई के बाद फसल को 5–7 दिन खलिहान में सुखाकर थ्रेसर द्वारा गहाई करनी चाहिए, ताकि दानों में नमी 9 से 10 प्रतिशत रह जाये।

उपज : उन्नत कृषि विधि से राजमा की खेती करने तथा फसल के अनुकूल परिस्थितियां होने पर सिंचित क्षेत्रों में 20 से 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा बारानी क्षेत्रों में 7–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

ध्यान रखने योग्य कुछ महत्तवपूर्ण बातें

1. तीन वर्ष में एक बार ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई अवश्य करें।
2. अनुमोदित किस्मों तथा रोगरोधी व कीट प्रतिरोधी किस्मों का ही प्रयोग करें।
3. बीज प्रमाणित संस्थाओं से ही प्राप्त करें तथा बुवाई से पूर्व बीजोपचार अवश्य करें।
4. पोषक तत्वों व उर्वरकों का प्रयोग मृदा परिक्षण के आधार पर ही करें।
5. पौध संरक्षण के लिए एकी त पौध संरक्षण उपायों को अपनाएं तथा समय पर खरपतवार नियंत्रण अवश्य करें।

किसान कॉल सेन्टर
हेल्पलाईन 0744–2662700
कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र
(राष्ट्रीय कृषि विकास परियोजना)
प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

ईसबगोल के औषधीय गुण एवं उन्नत खेती

सरिता, कमला महाजनी, आर. के. बैरवा एवं विक्रम
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

इसबगोल प्लांटागो ओवाटा नामक पौधे का बीज होता है। इस पौधे की डालियों में जो बीज लगे होते ही उनके ऊपर सफ़ेद रंग का पदार्थ चिपका रहता है। इसे ही इसबगोल की भूसी कहते हैं। इसबगोल की भूसी में कई औषधीय गुण पाए जाए हैं और यह सेहत के लिए बहुत गुणकारी है। ईसबगोल का उपयोग आयुर्वेदिक, यूनानी और पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में प्रयोग किया जाता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति में इसके बीजों को शीतल, शांतिदायक, मलावरोध को दूर करने वाला तथा अतिसार, पेचिश और आंत के जख्म आदि रोगों में उपयोगी बताया गया है। साथ है एलोपैथिक चिकित्सा में भी इसे स्वीकार किया गया है। इसबगोल के फायदों और मांग को देखते हुए बाज़ार में इस समय इसकी कीमत काफी बढ़ गयी है।

भारत समेत विश्व के कई देशों में ईसबगोल की खेती की जाती है और भारत से कई पडोसी देशों में इसबगोल का निर्यात भी किया जाता है। पश्चिम राजस्थान और उत्तरी गुजरात में रबी मौसम यह फसल प्रमुख रूप से की जाती है। किन्तु हरियाणा, पंजाब और मध्यप्रदेश में भी इसकी खेती आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं औषधीय फसल होने के कारण की जा रही है। संसार का ८० प्रतिशत ईसबगोल हमारे देश में पैदा होता है।

इसबगोल के औषधीय गुण : इसबगोल एक तरह से लैक्सेटिव की तरह काम करती है। इसमें फाइबर की मात्रा बहुत अधिक होती है साथ ही वसा और कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बिल्कुल भी नहीं होती है। आयुर्वेदिक और एलोपैथी दोनों ही चिकित्सा पद्धति में इसबगोल को औषधि या दवा के रुप में इस्तेमाल किया जाता है। इसबगोल, कब्ज के अलावा भी कई बीमारियों जैसे की पेचिस, दस्त, मोटापा, डिहाइड्रेशन, डायबिटीज आदि रोगों में भी बहुत गुणकारी है।

इसबगोल के फायदे

कब्ज़ दूर करने में सहायक : ईसबगोल में मौजूद फाइबर की अधिक मात्रा लैक्सेटिव की तरह काम करती है। इसबगोल की पानी के साथ मिलाकर खाने के एक घंटे बाद लें और इसके बाद एक या दो गिलास पानी और पी लें। यह आंतों की मांसपेशियों की गतिशीलता बढ़ाती है और मल को मुलायम बनाती है जिससे मलत्याग करना काफी आसान हो जाता है। इसबगोल का सेवन कुछ ही दिन करने से कब्ज़ ठीक हो जाता है।

डायबिटीज : इसबगोल में जिलेटिन पाया जाता है जो शरीर में ग्लूकोज के विघटन और अवशोषण की प्रक्रिया को धीमी करती है। जिससे डायबिटीज या मधुमेह को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। कई शोधों में इस बात की पुष्टि हुई है कि डाइट में फाइबर से भरपूर चीजों का सेवन करने से इंसुलिन और ब्लड शुगर लेवल कम होता है जिससे डायबिटीज को नियंत्रित करना आसान हो जाता है।

वजन कम करने में सहायक: पेट ठीक से साफ़ ना होने की वजह से भी वजन बढ़ने लगता है। ऐसे में इसबगोल का सेवन करने से पेट अच्छे तरीके से साफ़ होता है और वजन कम करने में मदद मिलती है। इसके अलावा ईसबगोल खाने से देर तह पेट भरा हुआ महसूस होता है जिससे आप बेवजह कुछ खाने से बच जाते हैं।

बवासीर और फिशर के इलाज में सहायक : बवासीर और फिशर होने की सबसे मुख्य वजह कब्ज़ ही है। खाना ठीक से ना पचने और मलत्याग में कठिनाई होने के कारण ही गुदा के आस पास की नसें सूज जाती हैं और बवासीर की समस्या होती है। अगर आप ईसबगोल का सेवन कर रहे हैं तो यह आपके मल में पानी की मात्रा बढ़ाकर उसे और नरम बना देती है जिससे मलत्याग करना बिल्कुल आसान हो जाता है और उस दौरान दर्द भी नहीं होता है।

दिल के लिए फायदेमंद : इसबगोल की भूसी में कोलेस्ट्रॉल बिल्कुल भी नही होता है और फाइबर की मात्रा बहुत ज्यादा होती है। शोध के अनुसार ईसबगोल जैसे फाइबर से भरपूर चीजों को अपनी डाइट में शामिल करने से दिल से जुड़ी बीमारियों के होने का खतरा काफी कम हो जाता है। यह ब्लड प्रेशर को कम करने, लिपिड लेवल को बढ़ाने और हृदय की मांसपेशियों को मजबूत बनाने में मदद करती है। इस लिहाज से देखा जाए तो यह दिल को सेहतमंद रखने में बहुत उपयोगी है।

डायरिया के इलाज में सहायक : डायरिया होने पर इसबगोल को दही के साथ मिलाकर खाएं। दही में प्रोबायोटिक गुण होने के कारण यह संक्रमण को जल्दी ठीक करती है वहीं इसबगोल दस्त को रोकती है।

इसबगोल के सेवन से जुड़ी सावधानियां

- अगर आप पहले कभी एपेंडिसाइटिस या पेट में ब्लॉकेज जैसी समस्याओं से पीड़ित रह चुके हैं तो ईसबगोल का सेवन करने से पहले डॉक्टर की सलाह ज़रुर लें।

- गर्भावस्था के दौरान महिलाओं को किसी भी आयुर्वेदिक औषधि का सेवन डॉक्टर की सलाह पर ही करना चाहिए। इसलिए अगर आप गर्भवती हैं और कब्ज़ से आराम पाने के लिए इसबगोल का सेवन करना चाहती हैं तो पहले अपनी गायनकोलॉजिस्ट से इस बारे में पूछ लें।
- तीन साल से कम उम्र के बच्चों को ईसबगोल की भूसी खिलाने से परहेज करना चाहिए।
- कभी भी इसबगोल के पाउडर को सीधे निगलने की कोशिश ना करें। ऐसा करने से यह गले में अटक सकता है और तेज खांसी या गले में जलन की समस्या हो सकती है। हमेशा ईसबगोल को पानी या दही के साथ ही लें।

इसबगोल की उन्नत खेती

जलवायु एवं भूमि : ईसबगोल की फसल के लिए ठंडा एवं शुष्क जलवायु उपयुक्त रहता है। बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए 20 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड के मध्य का तापमान व मिट्टी का पीएच मान 7–8 सर्वोत्तम होता है। साफ, शुष्क, और धूप वाला मौसम इस फसल के पकाव अवस्था के लिए बहुत जरूरी है। पकाव के समय वर्षा होने पर बीज झड़ जाता है तथा छिलका फूल जाता है जिससे बीज की गुणवत्ता और पैदावार दोनों पर काफी प्रभाव पड़ता है। इसकी खेती के लिए दोमट, बलुई मिट्टी जिसमें जल निकासी की उचित प्रबंध हो, उपयुक्त होती है। अच्छी पैदावार के लिये जीवाष्मयुक्त मिट्टी जिसका पी. एच. मान 7.2 से 7.9 तक हो अच्छी रहती है।

खेत की तैयारी एवं भूमि उपचार : भूमि की दो से तीन जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बनाएं। दीमक व भूमिगत कीड़ों की रोकथाम हेतु अंतिम जुताई के समय क्यूनोलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 10 किलो प्रति एकड़ की दर से मिट्टी में मिला दे या जैविक फफूंदनाशी बुवेरिया बेसियाना एक किलो या मेटारिजियम एनिसोपली एक किलो मात्रा को एक एकड़ खेत में 100 किलो गोबर की खाद में मिलाकर खेत में बीखेर दे। मिट्टी जनित रोग से फसल को बचाने के लिए ट्राइकोडर्मा विरिड की एक किलो मात्रा को एक एकड़ खेत में 100 किलो गोबर की खाद में मिलाकर खेत अंतिम जुताई के साथ मिट्टी में मिला दें। जैविक माध्यम अपनाने पर खेत में पर्याप्त नमी अवशय रखें।

उन्नत किस्में

गुजरात ईसबगोल 2 : यह किस्म 118 से 125 दिन में पक जाती है तथा 5–6 क्विंटल प्रति एकड़ तक उपज दे सकती है। इसमें भूसी की मात्रा 28þ से 30þ तक पाई जाती है।

आर. आई. 89 : राजस्थान के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए विकसित यह किस्म 110 से 115 दिन में पक जाती है तथा उपज क्षमता 4.5 से 6.5 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह किस्म रोगो तथा कीटों के आक्रमण से कम प्रभावित होती है साथ ही भूसी उच्च गुणवत्ता वाली होती है।

आर. आई. 1 : यह किस्म 112 से 123 दिन में पक जाती है तथा उपज क्षमता 4.5 से 8.5 क्विंटल प्रति एकड़ होती है।

जवाहर ईसबगोल 4 : यह प्रजाति मध्य प्रदेश के लिए अनुमोदित की गई है. इसका उत्पादन 5.5 से 6 क्विंटल प्रति एकड़ लिया जा सकता है।

हरियाणा ईसबगोल 5 : इसका उत्पादन 4–5 क्विंटल प्रति एकड़ हेक्टर लिया जा सकता हैं।

इसके अलावा निहारिका, इंदौर ईसबगोल–1, मंदसौर ईसबगोल भी बेहतरीन किस्में है।

बुवाई का समय, बीज दर एवं बीजोपचार : ईसबगोल की बुवाई का उपयुक्त समय 10–20 नवम्बर तक है। इसके बाद बुवाई करने से उपज में कमी आ जाती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में बुवाई के लिये 4 से 5 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। ईसबगोल की बुवाई दो प्रकार से छिटकवां विधि से या कतारों में की जाती है। परन्तु कतारों में बुवाई करना अधिक उपयुक्त रहता है क्योंकि इस विधि से निराई–गुड़ाई व कटाई करने में आसानी रहती है। छिड़काव विधि के लिये बीजों को इसकी बीज दर से आठ से दस गुना बारीक छनी हुई मिट्टी के साथ मिलाकर छिड़काव करें व साथ ही साथ क्यारियों में बीज छिटक कर रैक चला देना चाहिए। तुलासिता रोग के प्रकोप से फसल को बचाने हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को 5 से 6 ग्राम एप्रोन 35 एस.डी. नामक दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके ही बोना चाहिये। प्रति हेक्टेयर पौधों की संख्या 3.4 लाख के करीब होनी चाहिए, क्योंकि सघन पौधे की संख्या से ज्यादा रोग पनपता है।

खाद व उर्वरक : अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद ईसबगोल की खेती के लिए लाभकारी है। इसलिए 15 से 20 तक सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर के हिसाब से आखरी जुताई के समय मिट्टी में मिलाएं। इसको 30 किलो नत्रजन और 25 किलो फास्फोरस की प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी एवं फास्फोरस की पूरी मात्रा बीज की बुवाई के समय 3 इंच गहरा उर्वरक दें तथा शेष आधी मात्रा बुवाई के एक माह बाद सिंचाई के साथ दें।

सिंचाई प्रबंधन : यह एक कम सिंचाई वाली रबी की फसल है, अतः ईसबगोल की फसल में लगभग 3 से 4 सिंचाईयों की आवश्यकता ही पड़ती है। ज्यादा सिंचाई देने पर फसल खराब हो जाती है। बुवाई के पश्चात पहली सिंचाई धीमी गति से करें। इसके लिये एक साथ 8 से 10 क्यारियों में पानी छोड़ दें। दूसरी, तीसरी व चौथी सिंचाई बुवाई के 25, 50 व 75 दिन बाद करें। यह ध्यान रहे कि फसल के पकने के समय सिंचाई नहीं करें इससे बीज एवं भूसी की गुणवत्ता में गिरावट आती है।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण : पहली निराई–गुड़ाई बुवाई के 30 दिन बाद करनी चाहिये तथा दो निराई 45 व 60 दिन के बाद करके फसल को खरपतवार मुक्त रखें। पहली निराई–गुड़ाई के समय फालतू पौधों को निकाल देना चाहिये व पौधों की छटाई करके पौधे से पौधे की दूरी 5 से.मी. कर देनी चाहिये। इसके साथ में बुवाई के 40 दिन बाद एक बार निराई–गुड़ाई अवश्य करें।

प्रमुख कीट एवं रोग नियंत्रण

मोयला (एफिड) : यह कीट पौधों के मुलायम भाग पक्षियों तथा फूलों से रस चूसते हैं, जिससे पौधों में विषाणु रोग फैलता है एवं फसल पीली पड़ने लग जाती है तथा दाने भी सिकुड़ जाते हैं जिससे उत्पादन कम हो जाता है। इसके नियंत्रण हेतु 0.03 प्रतिशत डाईमिथोएट 30 ई.सी. या 0.25 प्रतिशत मिथाईल ऑक्सीडेमाटॉन 25 ई.सी. या 0.10 प्रतिशत मैलाथियॉन 50 ई.सी. का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव करना चाहिये। छिड़काव सायंकाल के समय करें तथा सुरक्षित कीटनाशकों का उपयोग करना चाहिये जिससे मधुमक्खियों पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़े। यदि एक छिड़काव से मोयला का नियंत्रण नहीं हो तो दूसरा छिड़काव 12–15 दिन के पश्चात् करें।

मृदुरोमिल रोग (डाऊनी मिल्डयू) : बीज को बुवाई से पूर्व एप्रोन 35 एस.डी. दवा 5–6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करने से इस बीमारी का प्रकोप फसल की प्रारंभिक अवस्था में ही कम होता है। यदि फसल पर रोग का लक्षण दिखाई दे तो रिडोमिल एम.जेड. 72 डब्ल्यू.पी. (0.02 प्रतिशत) अर्थात् 2 ग्राम दवा या मेंकोजेब (0.03 प्रतिशत) अर्थात् 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर 2 से 3 छिड़काव 12–15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिये। उचित समय पर बुवाई, उचित पौधों की संख्या, सिफारिश अनुसार सिंचाई देने व उचित फसल चक्र अपनाने से रोग का प्रकोप कम होता है।

कटाई, मड़ाई एवं औसाई : 115 से 130 दिन में फसल पक कर तैयार हो जाती है। पकने पर फसल सुनहरी पीली और बालियां गुलाबी–भूरी हो जाती है तथा बालियों को अंगूठे और उंगलियों के बीच हल्का सा दबाने पर बीज बाहर निकलने लगता है। फसल की कटाई फरवरी–मार्च में करते हैं। कटाई के समय मौसम एकदम सूखा होना चाहिए। फसल को एकदम नीचे से या जड़ सहित उखाड़ लिया जाता है इसकी छोटी–छोटी पूलियाँ बनाकर पौधों को साफ खलियान में सूखने के लिये डाल देते हैं। दो–तीन दिन बाद सूखी हुई पूलियों को पक्के फर्श पर छिटक कर या डंडों से पीटकर या बैलों द्वारा अथवा ट्रेक्टर द्वारा गहाई कर दाने अलग कर लेते हैं।

पैदावार : उन्नत तकनीक अपनाकर किसान औसतन 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर बीज की उपज प्राप्त कर सकते हैं।

तोरिया: अंतरफसल के रूप में एक अच्छा विकल्प

राजूराम चौधरी एवं अक्षय कुमार योगी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा एवं भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

तोरिया एक अतिरिक्त तिलहन फसल के रूप में बहुत सफल है हालांकि इसकी कम उपज क्षमता के कारण मुख्य फसल के रूप में खेती नहीं की जाती है। कम अवधि के होने के कारण यह खरीफ और रबी फसलों के बीच एक अंतरवर्ती फसल के रूप में अच्छी तरह से फिट हो सकता है। कई किसान धान की अगेती फसल ले रहे हैं जबकि कई बार किसी कारण से खेती योग्य जमीन खाली रह जाती है। इस तरह के सभी क्षेत्रों को तोरिया की खेती के तहत लाया जा सकता है। हालाँकि फसल को कम संभावित उपज माना जाता है और इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है लेकिन वास्तव में यह सच नहीं है। बीज की उपज के प्रति इकाई क्षेत्र के हिसाब से देखा जाए तो तोरिया की फसल राया और सरसो के समान और गोभी सरसों से अधिक कुशल है।

तोरिया की अधिक उपज देने वाली किस्में

टी एल 15 : इसके पौधे की ऊँचाई मध्यम होती है। प्राथमिक तथा द्वितीय शाखायें बहुत अधिक होती हैं जिनमें पर्याप्त फलियां लगती हैं। बीज बड़े आकार के भूरे रंग के होते हैं जिनमें 43 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है। यह किस्म 90 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। यह तोरिया–गेहूँ फसल–चक्र अपनाने के लिए भी उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 6 क्विंटल प्रति एकड़ है।

संगम : यह संश्लिष्ट किस्म है। यह लगभग 110 दिन में पक जाती है और अधिक उपज देती है (प्रति एकड़ 6–7 क्विंटल) व तेल अंश 44 प्रतिशत है।

टी एच 68 : यह अगेती किस्म है। यह पकने में लगभग 90 दिन लेती है। इसके पौधों की ऊंचाई मध्यम (110 सैं.मी.) है। इसका बीज छोटा होता है (3.3 ग्राम/1000 बीज) तथा तेल अंश 43 प्रतिशत है। यह तोरिया–गेहूँ फसल–चक्र के लिए सर्वोत्तम किस्म है। इसकी औसत पैदावार 6 क्विंटल प्रति एकड़ है।

मिट्टी और जलवायु : तोरिया हल्की से लेकर भारी दोमट मिट्टी में अच्छी होती है परंतु इसके लिए, हल्की दोमट मिट्टी अच्छी होती है। तोरिया फसल 25 से 40 से.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उगती हैं।

खेत की तैयारी : बीज के अच्छे अंकुरण के लिए खेत को अच्छी तरह तैयार करना जरूरी है। सिंचित इलाकों में दर्मियाने मिट्टी पलटने वाले हल से पहले जुताई करने के बाद 2 से 3 बार देसी हल, हैरो या कल्टीवेटर से जुताई करके सुहागा अवश्य लगायें। असिंचित क्षेत्रों में देसी हल अथवा कल्टीवेटर से एक या दो जुताइयां करके सुहागा लगायें। तोरिया के लिए अच्छी नमी वाले खेत की जरूरत है लेकिन अच्छे अंकुरण के लिए बहुत अधिक नमी ठीक नहीं है।

बीज की मात्रा : सिंचित अवस्था में प्रति एकड़ सवा किलोग्राम बीज काफी है। बारानी हालत में जमीन में नमी के अनुसार 2 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें।

बिजाई का समय व तरीका : तोरिया के लिए बिजाई का उचित समय सितम्बर के मध्य तक हैं। यदि तोरिया के बाद गेहूँ की फसल लेनी हो तो तोरिया की बिजाई अगस्त के आखिरी सप्ताह में या सितम्बर के पहले सप्ताह तक अवश्य कर लें। बिजाई कतारों में 30 से.मी. के फासले पर 4 से 5 से.मी. गहरी ड्रिल विधि से करें। पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 से.मी. रखने के लिए, बिजाई के 3 सप्ताह बाद पौधों की छंटाई करते हैं।

खाद एवं उर्वरक व डालने का तरीका : असिंचित क्षेत्रों में 35 किलोग्राम यूरिया एवं 50 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ डालें। सिंचित क्षेत्रों में 52 किलोग्राम यूरिया एवं 50 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ डालें। इसके अतिरिक्त प्रति एकड़ एजोटोबेक्टर के एक टीके का प्रयोग किया जा सकता है। असिंचित अवस्था में सभी उर्वरक बिजाई के तुरन्त पहले पोर करें। सिंचित अवस्था में सारी फास्फोरस, पोटाश तथा जिंक सल्फेट और आधी नाइट्रोजन बिजाई से तुरन्त पहले डालें और शेष नाइट्रोजन की मात्रा पहले पानी के साथ डालें। यदि फास्फोरस की पूर्ति के लिए डी. ए. पी. का प्रयोग करना है तो उसमें 2 कट्टे (100 किलोग्राम) जिप्सम प्रति एकड़ की दर से बिजाई से पहले की जुताई के समय या बिजाई पूर्व सिंचाई के समय दें।

सिंचाई : तोरिया में आम तौर पर दो सिंचाइयाँ– एक फूल निकलने के समय और दूसरी फलियां लगते समय देते हैं। यदि पानी की कमी हो तो फूल आते वक्त एक सिंचाई बहुत ही लाभदायक है।

निराई तथा गुड़ाई : तोरिया में व्हील हैंड हो से बिजाई के तीन सप्ताह बाद एक गुड़ाई अवश्य करें।

आलू के प्रमुख कीटों का प्रबंधन

कृष्णा अवतार मीना, जितेन्द्र कुमार गुप्ता एवं योगेंद्र कुमार मीना
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुम्हेर, भरतपुर एवं कृषि महाविद्यालय, कुम्हेर, भरतपुर, राजस्थान

आलू भारत की एक महत्वपूर्ण फसल है। आलू के उत्पादन में विश्वभर में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। भारत में आलू की उत्पादकता (22 टन/हे.) विश्व के कई देशों के मुकाबले कम है। खेतों तथा भंडार गृह में लगने वाले रोग एवं कीट आलू को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में आलू की फसल को कीटों द्वारा 40–50 प्रतिशत तक नुकसान होता है। आलू की खेती के दौरान इस पर कई प्रकार के कीटों का आक्रमण होता है। यदि हमें आलू की ज्यादा पैदावार चाहिए तो उसके लिए इन कीटों का प्रबंधन बहुत ही आवश्यक है। इस लेख में आलू के कुछ प्रमुख कीटों से होने वाले नुकसान एवं इनके प्रबंधन हेतु किए जाने वाले उपायों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है।

माहुं या चैंपा (मोयला) : माहुं कीट एक सर्वव्यापी व बहुभक्षी कीट है। माइजस परसिकी व एफिस गौसिपी नामक मांहू आलू की फसल पर प्रत्यक्ष रूप से तो ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाते परंतु ये विषाणुओं को फैलाते हैं। रोग मुक्त बीज आलू उत्पादन में ये कीट प्रमुख बाधक हैं।

पत्ती की निचली सतह पर माहू

लक्षण एवं नुकसान : माहुं पत्ती मोड़क (पी.एल.आर.वी.) व वाई वायरस (पी.वी.वाई.) के मुख्य वाहकों के रूप में कार्य करते हैं तथा इन वायरस रोगों से फसल को भारी नुकसान होता है। प्रौढ व शिशु दोनों पौधों के विभिन्न भागों जैसे पत्ती, तना, व टहनी से रस चूस कर नुकसान पहुँचाते है। यह कीट समूहों मे रहते है व तीव्रता से वंशवृद्वि करते है। ये कीट पहले फसल की वानस्पतिक कलिका पर प्रकट होते है व धीरे–धीरे पूरे पौधे को ढक लेते हैं।। फसल पर माहुं के मानिटरिंग से इसके द्वारा बीज फसल में बढ़ने वाले वायरस को कम किया जा सकता हैं। फसल या खेतों में माहुं के प्रभाव को आँकने के लिए उनकी गिनती 100 यौगिक पत्तियों पर प्रति सप्ताह की जाती हैं। यदि इनकी संख्या 20 माहुं/100 पत्ती हो जाए तो इस पर रसायन का छिडकाव जरूरी हो जाता है।

कीट प्रबंधन : हमारे देश के गंगा के मैदानी इलाकों में ही लगभग 90 प्रतिशत बीज आलू की खेती की जाती है। इन क्षेत्रों में बीज आलू की फसल माहुं रहित अवधि में करनी चाहिए।

- बीज आलू की फसल तथा अन्य सब्जियों की फसल के बीच कम से कम 50 मीटर की दूरी रखें।
- खेतों में या आसपास उगे माहुं ग्रसित पौधों, विशेषकर पीले रंग के फूल वाले पौधो को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
- आवश्यकता पड़ने पर फसल पर किसी उपयुक्त कीटनाशक जैसे इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 3 मि.ली. मात्रा/10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

सफेद मक्खी : सफेद मक्खी एक बहुभक्षी कीट है। बेमिसिया प्रजाति की सफेद मक्खियाँ आलू फसल को नुकसान पहुंचाती है। यह छोटी–छोटी मक्खियों जैसे सफेद कीट होते है। वयस्क मक्खी का शरीर पीलापन लिए हुए सफेद मोम जैसे चूर्ण से आच्छादित रहता है। रोग मुक्त बीज आलू उत्पादन हेतु सफेद मक्खी की रोकथाम आवश्यक है।

पत्ती की निचली सतह पर सफेद मक्खियां

लक्षण एवं नुकसान : ये कीट मुख्य रूप से आलू में जेमिनी वाइरस और एपिकल लीफ कर्ल वाइरस के लिए वाहक का काम करते हैं। इस कीट के शिशु व वयस्क दोनों ही पौधो की पत्तियों की निचली सतह से रस चूसतें है। इसके प्रभाव से पौधे की पत्तियाँ पीली पड़ जाती है, पत्ते सिकुड़कर नीचे की ओर मुड़ जाते है। यह कीट मधू स्राव निकालते है जिससे पौधौ पर काले कवक का आक्रमण हो जाता है, तना व पत्तियॉ काली हो जाती है जिससे प्रकाश संश्लेषण में बाधा आती है। वाइरस के कारण पत्ते मुड़ जाते हैं एवं पौधे पीले पड़ जाते हैं।

कीट प्रबंधन

- आलू की फसल पर सफेद मक्खियों की संख्या को मॉनिटर करने एवं इन्हे पकड़ने हेतु पीले चिपचिपे ट्रेप का प्रयोग करें।
- घास और वैकल्पिक परपोषी पौधों को निकाल दें।
- आवश्यकता के अनुसार 10 दिनों के अंतराल पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 3 मि.ली. मात्रा/10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

कटुआ लट

कटुआ लट आलू का एक प्रमुख कीट है। ये मैदानी तथा पहाड़ी, दोनों इलाकों में सक्रिय रहते हैं। सूखे के मौसम में जब पौधों के तने नए और कोमल होते हैं, इसका प्रकोप बहुत तेजी से बढता है। यह एक सर्वव्यापी व बहुभक्षी कीट है। भारत में आलू की फसल को यह कीट 12–40 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाता है।

लक्षण एवं नुकसान : फसल को केवल ईल्ली ही नुकसान पहुंचती है। ये ईल्ली रात के समय आलू की नई शाखाओं या जमीन के नीचे दबे हुए

कंदों को खाती हैं। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ईल्ली अपना भोजन नए पौधे के डंठलो, तने और शाखाओं से ग्रहण करता है। बाद में यह कन्दों को छेदकर खाते हुए नुकसान पहुंचाते हैं जिससे कुल पैदावार तो घटती ही है, साथ ही साथ बाजार में भी इनका दाम कम मिलता है।

कीट प्रबंधन

- मैदानों में गर्मियों में जुताई करके अवयस्क अवस्था में ही कटुआ लट की वृद्धि को कम किया जा सकता है। जुताई के कारण जमीन से बाहर आए हुए इन कीडों को इसके प्रकृतिक शत्रु कौआ, मैना, बगुला आदि खा लेते हैं।
- कटुआ लट का प्रकोप दिखाई देते ही क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत अथवा मैलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से समानरूप से भुरकाव करे अथवा क्लोरपाइरीफोस 20 ईसी कीटनाशक को 2.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़काव करें।

सफेद लट

सफेद लट आलू की फसल में मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाती हैं। उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा पूर्वोत्तरी पहाड़ी इलाकों में, इसके कारण प्रभावित आलू की फसल को 10 से 80 प्रतिशत तक नुकसान होता है। देर से खोदी गई फसल पर नुकसान अधिक होता है।

लक्षण एवं नुकसान: आलू की फसल को नुकसान पहुंचाने वाली सफेद लट की प्रमुख प्रजातियाँ ब्राहमीना कोरेसिया तथा ब्राहमीना लोंगीपेनिस हैं। ये सूँडी प्रारम्भ में मिट्टी के जैविक पदार्थों को खाती है परंतु बाद में ये पौधों की जड़ो को खाकर अपना पेट भरते हैं। इसका लार्वा आलू कंदों में सुराख बनाते हुए अपना भोजन करते हैं। इससे बाजार में आलू की कम कीमत मिलती है।

कीट प्रबंधन

- परपोषी वृक्षों व उसकी शाखाओं को अच्छी तरह हिलाकर भृंगो को इकट्ठा कर किसी कीटनाशी का इस्तेमाल करके इन्हें मारा जा सकता है।
- मानसून आने से पहले अप्रैल– मई के महीने में खेत की दो से तीन बार जुताई करें और मिट्टी को खुला छोड़ें ताकि बाहर निकली लट और प्यूपा को इनके स्वाभाविक दुश्मन जैसे कौवा, मैनाए बगुला आदि खा लें।
- रात में वयस्क कीटों को प्रकाश ट्रेप की सहायता से पकड़कर नष्ट कर दें।
- खेतों में सदैव गोबर की अच्छी तरह से सड़ी गली खाद ही डालें।
- वयस्क भृंगो को मारने के लिए परपोषी पौधों पर कीटनाशकों जैसे क्लोरपाइरीफोस 20 ईसी को 2.5 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- बुवाई या मिट्टी चढ़ाते समय पौधों के नजदीक देहिक कीटनाशी जैसे कार्बोफ्यूरान 3जी की 2.5 से 3.0 किलोग्राम वास्तविक मात्रा का प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग करें।

आलू कंद शलभ : यह आलू का प्रमुख कीट है। सोलेनिसियस परिवार के कुछ पौधे जैसे बैंगन, टमाटर, आलू, तंबाकू तथा धतूरा इसके प्रमुख परपोषी पौधे हैं।

प्रौढ़ शलभ

सूंडी

प्रभावित आलू कन्द

लक्षण एवं नुकसान: आलू कंद शलभ की तितली सबसे पहले पत्तियों तथा मिट्टी से बाहर निकले हुए आलू कंदों पर अंडे दे देती हैं। इन अंडो से निकला हुआ लार्वा आलू की पत्तियों एवं तनों को खाते हुए उसमें सुरंग बना देते हैं। देशी भंडारगृह में रखे आलुओं की आंखों को भेदकर उसमें सुराख बना देते हैं। बाद में इन क्षतिग्रस्त आलुओं में फफूंद लग जाती हैं जिससे ये सड़ जाते हैं। यह कीट भंडारण एवं खेतों में आलू की फसल को 60–70 प्रतिशत तक हानि पहुंचाता है।

कीट प्रबंधन : सिर्फ एक उपचार से इस कीट की रोकथाम संभव नहीं हैं। खेत एवं भंडारगृहों में पी.टी.एम. (पोटेटो टूबर मोथ) के नियंत्रण के लिए एकीकृत प्रबंधन तरीकों को अपनाना जरूरी है। इस कीट के प्रभावी नियंत्रण हेतु निम्नलिखित उपाय हैं।

- खेतों में बुआई के लिए रोग एवं कीट रहित बीज आलू का ही प्रयोग करें।
- खेतों में आलू की बुवाई 10 सेंटीमीटर गहराई तक करने से यह कीट काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।
- खेतों में समय से कन्दों पर मिट्टी चढ़ानी चाहिए ताकि कोई भी कन्द जमीन से बाहर न रहें।
- खेतों में नियमित रूप से सिंचाई करते रहे जिससे खेतों में दरार न आने पाये।
- भंडारगृह में आलू के ढेर के नीचे एवं ऊपर सूखी हुई लेंटाना या सफेदा की 2.5 सेंटीमीटर मोटी तह बिछाने पर इन कीटों से बचा जा सकता है।
- बीज के लिए भंडारित आलुओं पर मैलाथियुन 5 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण की 125 ग्राम/क्विंटल आलू की दर से प्रयोग करें। खाने वाले आलू पर इस रसायन का प्रयोग न करें।
- खाने हेतु आलू के ऊपर बेसिलस थूरिंनजियंसिस (बी.टी.) या ग्रेनुलोसिस वायरस (जी.वी.) के चूर्ण का 300 ग्राम/क्विंटल की दर से भुरकाव करें।
- खेतों में कन्द शलभ को पकड़ने हेतु यौन गंध आधारित जल ट्रेप (20 ट्रेप/हेक्टयर) का प्रयोग प्रभावशाली रहता है।
- भंडारगृह में कन्द शलभ को रोकने हेतु परजीवी, चींटियों, छिपकलियों आदि स्वाभाविक शत्रुओं की बढ़वार होने देना चाहिए।

यदि किसान भाई ऊपर लिखे हुए बातों का ध्यान रखते हुए आलू की खेती करें तो निश्चित ही आलू में लगने वाले कीटों पर नियंत्रण पाया जा सकता है एवं अधिकाधिक लाभ कमाया जा सकता है।

बीज की गुणवत्ता, ह्रास एवं नियंत्रण के उपाय

आर. के. महावर, एस. एन. मीणा, हनुमान सिंह एवं सुभाष असवाल

कृषि महाविद्यालय, हिंडोली, बूंदी, राजस्थान

कृषि उत्पादन बढ़ाने के विभिन्न संसाधनों में बीज एक मूलभूत कारक है। अन्य सभी संसाधनों एवं सस्य क्रियाओं का उचित लाभ तभी मिल सकता है जब उचित किस्म का अधिकतम उत्पादन क्षमता वाला बीज समय पर बोया गया हो। अधिक उत्पादन क्षमता एवं उपयुक्त गुणवत्ता युक्त बीज से स्वस्थ एवं जल्दी विकास करने वाले पौधे प्राप्त होते हैं। जो दिये गये उर्वरक एवं सिंचाई का अधिकतम उपयोग कर अधिक उत्पादन देते है तथा उत्पादकता अच्छी गुणवत्तायुक्त बीज से बढ़ाई जा सकती है। कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, नाभिकीय, प्रजनक, आधार, प्रमाणित एवं सत्य चिन्हित बीज का उत्पादन कर रहा है। अच्छे गुणवत्तायुक्त बीज के उत्पादन से विश्वविद्यालय की आय में बढ़ोतरी के साथ–साथ विश्वसनीयता भी बढ़ेगी। विश्वविद्यालय से अच्छे गुणवत्तायुक्त बीज का उत्पादन प्रसंस्करण व विपणन हो इसके लिए बीज नीति की आवश्यकता है। उन्नत किस्मों के शुद्ध बीज पांच श्रेणी में विभक्त किये जाते है।

(i) **नाभिक बीज :** यह वैज्ञानिक/प्रजनक द्वारा उत्पादित उन्नत किस्म का वह प्रारम्भिक स्त्रोत बीज है जिसे विशेष निगरानी व देखरेख में प्रतिवर्ष निरंतरता बनाए रखने के लिए मुख्य स्त्रोत के रूप में तैयार किया जाता है। इसकी आनुवांशिकी शुद्धता शत प्रतिशत होती है।

(ii) **प्रजनक बीज :** नाभिक बीज से उत्पादित द्विगुणित बीज को प्रजनक बीज कहते है। इसे भी विशेष सावधानी तथा तकनीकी से तैयार किया जाता है। आवश्यकतानुसार इसे प्रजनक द्वारा ही उत्पादित किया जाता है तथा खेत और प्रयोगशाला में निरीक्षण व जाँच–पड़ताल कर पारित किया जाता है। प्रजनक बीज अतिशुद्ध होता है। इस बीज को उत्पादन करने वाली संस्था द्वारा सुनहरा पीला टेग प्रदान किया जाता है। इसकी आनुवांशिकी शुद्धता १०० प्रतिशत होती है।

(iii) **आधार बीज :** प्रजनक बीज से उत्पादित बीज को आधार बीज कहते है। इसकी अवस्था एक या दो आवश्यकतानुसार हो सकती है। इसे बीज निगम संस्थाओं के प्रक्षेत्रों पर पृथक्करण दूरी व अन्य सावधानियों से उगाया जाता है। इसका पंजीकरण बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा बीज अधिनियम के अंतर्गत होता है। फसल के आनुवांशिक गुणों और लक्षणों के आधार पर शुद्धिकरण, अवांछित पौधों को निकालना व प्रसंस्करण की तकनीकी विधाओं का पालन करते हुए लेबल लगाए जाते है। इसे भौतिक शुद्धता, स्वस्थता, आनुवांशिक शुद्धता और न्यूनतम अंकुरण क्षमता के पारित होने पर सफेद रंग का टेग एवं ग्रीन लेबल लगाया जाता है। इसकी आनुवांशिकी शुद्धता ९९ प्रतिशत होती है। इसका ग्रो आउट टेस्ट भी किया जाता है।

(iv) **प्रमाणित बीज :** आधार बीज से बहुगुणित उत्पादित बीज प्रमाणित बीज कहलाता है। इसे आधार बीज से पंजीकृत कृषकों के प्रक्षेत्रों पर सावधानी एवं बीज नियमों का पालन करते हुए उत्पादित किया जाता है। प्रमाणित बीज ही बाद में कृषकों को खेती करने के लिए दिया जाता है। इस बीज को भी शुद्धता, अंकुरण क्षमता तथा आनुवंशिक शुद्धता की जाँच के बाद ही प्रमाणित बीज को नीले रंग का टेग एवं ग्रीन लेबल लगाया जाता है। यह कार्य बीज प्रमाणीकरण संस्था करती है। इसकी आनुवांशिकी शुद्धता ९८ प्रतिशत होती है।

(v) **सत्यचिन्हित बीज :** अधिक मांग होने एवं प्रमाणित बीज की कमी होने की स्थिति में कभी–कभी सत्यचिन्हित बीज का उत्पादन संस्थानों द्वारा बिना बीज प्रमाणीकरण संस्था की देखरेख में उत्पादन के निश्चित मापदण्ड अपनाते हुए किया जाता है। इन बीजों को सत्यापित या सत्य अंकित बीज कहते है। इन बीजों को प्रमाणीकरण संस्था द्वारा प्रमाण–पत्र नहीं दिया जाता है। इसकी आनुवांशिकी शुद्धता ९८ प्रतिशत होती है।

उत्तम बीज की विशेषताएँ

(i) **बीज की भौतिक शुद्धता:** बीजों में किसी दूसरी फसल या खरपतवारों के बीजों का मिश्रण नहीं होना चाहिए। उसमें कंकड, पत्थर, धूल, मिट्टी, भूसा, डंठल आदि भी नहीं होने चाहिएं विभिन्न फसलों के बीज जो रंग व आकार–प्रकार में समान होते है, उनका आपस में मिश्रण नहीं होता है। खरपतवार के बीजों के मिश्रण से विशेष तौर से बीजों की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(ii) **बीज की अंकुरण क्षमता:** बीज का मूल्यांकन उसकी अंकुरण क्षमता पर निर्भर करता है। इसी के आधार पर बुवाई के लिए बीज की मात्रा निर्धारित की जाती है। प्रत्येक फसल के लिए अंकुरण प्रतिशत का निम्न स्तर निर्धारित है। बीज परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा जाँच किया जाता है और हमेशा उससे अधिक अंकुरण प्रतिशत वाला बीज ही बुवाई के काम मे लेना चाहिए।

(iii) **बीज की जीवन क्षमता:** बीज के भ्रूण को क्षति पहुंचाने पर उसकी जीवन क्षमता नष्ट हो जाती है। बीज को कीटों द्वारा नुकसान, अधिक नमी व ताप पर भंडारण या अन्य भंडारण दोषों से उसकी

जीवन क्षमता समाप्त हो जाती है। इसके साथ–साथ बीज की परिपक्वता व आयु का ज्ञात होना आवश्यक है। सामान्यतः परिपक्व बीज चमकीला, साफ तथा भरा हुआ होता है और अपरिपक्व बीज सिकुड़े हुए, छोटे तथा बदरंग होते है। पुराने बीजों में भी नये बीजों की अपेक्षा कम चमक होती है। बीज पुराना होने अथवा परिपक्वता में कमी होने के कारण उसकी अंकुरण व जीवन क्षमता कम हो जाती है।

(iv) **बीज की सुडौलता, आकार, रंग व आकृति में समानता:** बीज सुडौल तथा किसी भी प्रकार से क्षतिग्रस्त नहीं होना चाहिए। बीजों का टूट जाना काफी हानिकारक होता है क्योंकि मृदा जनित रोगों का ऐसे बीजों पर आसानी से आक्रमण हो जाता है। बीज रंग, आकृति तथा आकार में भी समान होना चाहिए। छोटे तथा सिंकुड़े हुए बीजों में संचित खाद्य–पदार्थ की कमी होने के कारण उनसे कमजोर पौधे विकसित होते है जिनसे कम उपज प्राप्त होती है। इसके विपरीत बड़े आकार के स्वस्थ बीजों से प्रायः स्वस्थ तथा मजबूत पौधे तैयार होते है, जो जलवायु की प्रतिकुल स्थितियों में भी अच्छी प्रकार पनप सकते है।

(v) **बीजों का रोगाणु एवं कीटाणु रहित होना:** रोगाणुओं तथा कीटों से बीजों का मुक्त रहना निहायत जरूरी है। बीज द्वारा फैलने वाले रोगों के रोगाणु बीजों पर आक्रमण कर उन्हें बुवाई के लिए बेकार कर देते है। भंडारण काल में बहुत से कीट बीजों की जीवन शक्ति नष्ट कर देते है। ऐसे बीज बुवाई के लिए अयोग्य होते है। रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए बीजों को भौतिक अथवा रासायनिक विधि द्वारा उपचारित किया जाता है। कीटों की संख्या 0.5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। दालें एवं मक्का में यह 1 प्रतिशत तक हो सकती है।

(vi) **बीज प्रसृप्ति:** कुछ फसलों की बीज जैसे आलू, खीरा, टमाटर, बैंगन आदि पूरी तरह परिपक्व एवं अंकुरित होने के लिए सभी आवश्यक तथा अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करने पर भी अंकुरित नहीं हो पाते। ऐसे बीज बोने पर किसान खेती से बिल्कुल ही हाथ धो बैठता है। अतः ऐसे बीजों का चुनाव नहीं करना चाहिए जो प्रसुप्तावस्था में हो। अगर बीज प्रसुप्तावस्था में हो तो विभिन्न उपचारों (प्रकाश, तापमान, रसायन आदि) द्वारा प्रसुप्ति तोड़ देनी चाहिए। अधिकांश फसलों के बीज कुछ समय तक भंडारण करने के पश्चात् इस अवस्था से बाहर निकल जाते है।

बीज गुणवत्ता में ह्रास : बीज के उत्पादन, गहाई, प्रसंस्करण एवं वितरण के दौरान कई कारणों से बीजों की गुणवत्ता का ह्रास होता है, जो निम्नानुसार है।

(i) **वातावरण:** मृदा की किस्म, भूमि में नमी की मात्रा, खेत का समतल होना, तापमान आदि बीज के अंकुरण पर प्रभाव डालते है। भूमि की उर्वरता, सिंचाई, उर्वरक व पौध सरंक्षण उपायों के समुचित उपयोग की कमी से फसल की उपज कम होती है साथ ही बीज की सुडौलता, आकार, रंग व आकृति भी प्रभावित होती है। अतः अनुकूल वातावरण में ही बीज उत्पादन कार्यक्रम लिया जाता है। वैसे वातावरण के कारण विविधता फसल की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित नहीं होती, परन्तु बीज फसल से अधिक आर्थिक लाभ हेतु अनुकूल वातावरण आवश्यक है।

(ii) **आनुवंशिक परिवर्तन:** फसल की विभिन्न किस्मों में कई कारणों से आनुवंशिक परिवर्तन होते है, जो इस प्रकार है–

(अ) **वातावरण की विभिन्नता:** बीज की किस्म में भिन्न वातावरण में उगाने पर उसमें कभी–कभी आनुवंशिक परिवर्तन होता है।

(ब) **प्राकृतिक संकरण:** स्व–परागित फसलों में भी 1–5 प्रतिशत तक पर–परागण होता है, जिससे बीज की आनुवंशिक शुद्धता में कमी आती है। इसी कारण बीज उत्पादन में बीज स्त्रोत की पुष्टि, पृथक्करण दूरी तथा अवांछनीय पौधों को निकालने पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(स) **उत्परिवर्तन:** पौधों में कभी–कभी स्वतः ही उत्परिवर्तन होने से भी बीज की आनुवंशिक शुद्धता में कमी आती है।

(iii) **यान्त्रिक मिश्रण:** बीज फसल की बुवाई, कटाई, गहाई, प्रसंस्करण, भण्डारण आदि के दौरान अन्य किस्म, अन्य फसल व खरपतवारों के बीजों का मिश्रण हो जाता है। कटाई व गहाई के समय बीजो में कंकड़, मिट्टी आदि का मिश्रण भी हो जाता है। इस प्रकार के यांत्रिक मिश्रण से बीज की गुणवत्ता में कमी आती है।

(iv) **रोग व कीट:** यदि बीज को फंफूदनाशी व कीटनाशी रसायनों से उपचारित नहीं किया गया हो तो बीज बीज–जनित रोगों एवं कीटों का वाहक हो जाता है। भण्डारण के दौरान भी कीटों द्वारा बीज को नुकसान पहुंचाया जाता है।

(v) **नमी:** बीजों की उत्तम गुणवत्ता बनाये रखने हेतु बीजों में उचित नमी का होना आवश्यक है। बीज प्रसंस्करण के दौरान बीज में अधिक व कम नमी होने पर बीज टूट जाते है। भण्डारण के दौरान अधिक नमी होने पर बीज की जीवन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भण्डारण व विपणन के दौरान अधिक नमी के कारण बीजों की श्वसन क्रिया तेज हो जाती है, जिससे ऊष्मा की मात्रा बढ़ने के कारण बीज सड़ने व अंकुरण क्षमता में कमी की समस्या आती है। बीज में अधिक नमी होने पर कीटों व बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ जाता है।

(vi) **यांत्रिक क्षति:** बीज की कटाई, गहाई, सफाई व प्रसंस्करण के दौरान मशीनों के उपयोग से बीज टूट जाते है, जिससे बीजों की अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है। ऐसे टूटे बीज अंकुरण के बाद भी रोग ग्रस्त हो जाते है।

बीज गुणवत्ता नियन्त्रण : बीज गुणवत्ता ह्रास एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया है। यदि बीज एक बार खराब हो जाता है तो उसमें सुधार कर पाना असंभव है। अतः बीज फसल की बुवाई से लेकर विपणन तक बीज संदूषण के विभिन्न कारणों को ध्यान में रखकर बीज उत्पादन कार्यक्रम लेना चाहिए।

(i) **बीज उत्पादन के दौरान गुणवत्ता नियन्त्रण**

(अ) **बीज स्त्रोत :** बीज उत्पादन हेतु प्रजनक या आधार बीज मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय या संस्थान से क्रय करना चाहिए, जिससे बीज की उत्तम गुणवत्ता के साथ–साथ उसकी वर्ग व वंशावली का भी ध्यान रहे। बुवाई पूर्व थेलों पर लगे टेग, लेबल व सील की भली–भांति जांच कर बीज के श्रेणी के सम्बन्ध में आश्वस्त होना आवश्यक है।

(ब) **खेत का चयन :** बीज फसल हेतु ऐसे खेत का चुनाव करना चाहिए जिसमें स्वैच्छिक उगे पौधों की समस्या न हो तथा पिछले वर्ष वह फसल उस खेत में नहीं उगाई गई हो। यदि पिछले वर्ष खेत में रोगों व कीटों का अधिक प्रकोप हुआ हो तो भी ऐसे खेत का चुनाव न करें। खेत का समतल होना भी आवश्यक है।

(स) **पृथक्करण दूरी :** बीज फसल पर पर–परागण, कटाई व गहराई में होने वाले मिश्रण तथा रोगों से बचाव हेतु निर्धारित पृथक्करण दूरी रख कर बीज की उपयुक्त गुणवत्ता रखी जा सकती है।

(द) **फसल सुरक्षा :** बीज फसल को खरपतरवारों, रोगों व कीटों से मुक्त रखने हेतु समय–समय पर निराई–गुडाई व पौध संस्करण रसायनों का छिड़काव करना चाहिए।

(य) **अवांछनीय पौधों को निकालना :** फसल में पुष्पन से पूर्व अन्य किस्मों के पौधों, रोगी पौधों व खरपतवारों के पौधों को निकाल देना चाहिए।

(र) **कटाई व गहाई :** बीज फसल की कटाई परिपक्व अवस्था पर ही करनी चाहिए। देरी से कटाई करने पर धूप, वर्षा, बीज बिखरने व चटकने से बीजों की गुणवत्ता में कमी आती है। जल्दी कटाई करने पर अधिक नमी के कारण गहाई व सफाई के दौरान बीजों को नुकसान होता है। बीजों की गहाई के समय यह ध्यान रखा जाये कि बीज में अन्य फसल, किस्म व खरपतवारों के बीजों का मिश्रण न हो। गहाई के समय थ्रेसिंग फ्लोर, थ्रेसिंग मशीन व बोरों को भली–भांति साफ कर लेना चाहिए। कम्बाईन के हार्वेस्ट के दौरान प्रत्येक किस्म के बाद पूरी मशीन की सफाई करना चाहिए।

(ii) **बीज प्रसंस्करण के दौरान गुणवत्ता नियंत्रण**

(अ) **बीज सुखना :** बीज सुखाने के दौरान उस स्थान को पूरी तरह साफ कर लेना चाहिए, जिससे अन्य बीजों का मिश्रण न हो। बीज में अधिक नमी के कारण अंकुरण व ओज प्रभावित होता है। अतः उचित नमी तक बीज को सुखाना चाहिए। प्रसंस्करित बीजों में 10–13 प्रतिशत नमी होती है। बीज में जल की मात्रा उपयुक्त सीमा से कम या अधिक होने पर बीज को कई तरह की हानियाँ होती है और अंकुरण क्षमता पर विपरित प्रभाव पड़ता है।

(ब) **बीज की सफाई व ग्रेडिंग :** बीजों की सफाई व ग्रेडिंग के पूर्व सीड क्लीनर व ग्रेडिंग यंत्रों की जांच कर यह सुनिश्चित कर लें कि यन्त्रों में अन्य किस्मों व फसलों के बीज नहीं है तथा ग्रेडिंग यन्त्र सुचारू रूप से कार्यरत है।

(स) **बोरा बंदी व भण्डारण :** बीज भण्डारण हेतु काम में आने वाले थैले या बोरियां साफ व नमी रोधी होनी चाहिए। जहां तक संभव हो बीज भण्डारण हेतु नये बोरों या थैलों का इस्तेमाल करें। बीजों का कम नमी व कम तापमान की स्थिति में भण्डारण करना चाहिए। बोरों या थैलों को लकड़ी/प्लास्टिक के पेलेट पर रखे, जिससे फर्श की नमी इन पर नहीं चढ़े।

(iii) **बीज विपणन के दौरान गुणवत्ता नियंत्रण**

बीजों के वितरण व विपणन के दौरान क्षेत्र विशेष की जलवायु, सापेक्ष आर्द्रता, तापमान आदि बीजों की गुणवत्ता प्रभावित करती है। बीज के थैलों व बोरों पर बीज के बारे में सम्पूर्ण जानकारी अंकित होनी चाहिए, जिससे बीज की आयु व दशा का ज्ञान हो सके। बिना बिके बीज का समय–समय पर गुणवत्ता परीक्षण करना चाहिये। किस्मवार स्टेक लगाकर रखे जिससे अन्य किस्म के थैलों का मिश्रण न हो।

बीज भण्डारण विभिन्न की अवस्थाएं

(i) **प्राकृतिक अवस्था** (Ambient Condition) **:** गोदाम का ताप व नमी प्रतिदिन के मौसम पर निर्भर करता है। ज्यादातर सरकारी एवं गैर–सरकारी गोदाम इसी श्रेणी में आते है। किसान का बीज भी इसी अवस्था में बोरी या कोठियों में रखा जाता है।

(ii) **नियंत्रित अवस्था**(Controlled Condition) : आर्द्रता (40%) एवं तापक्रम ($20^{o}C$) को नियंत्रित करके बीज का भण्डारण किया जाता है। कुछ सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाएं अधिक कीमती बीज का भण्डारण नियंत्रित अवस्था में करती है।

(iii) **माइनस तापक्रम अवस्था** (Cryogenic Condition) : इस प्रणाली को लम्बे समय तक भण्डार करनेके लिए उपयोग लिया जाता है। इसके लिए करीबन माइनस $20^{o}C$ तापक्रम रखा जाता है। इस स्थिति में ज्यादातर कीटों की समस्या दूर रहती है।

(iv) **अतिशुष्क बीज भण्डारण** (Ultra-dry Seed Storage) **:** इस तकनीक में बीज की नमी को 5% तक कम किया जाता है। इस तकनीक से बीज वाले मसालों के बीज की उम्र बढ़ाई जा सकती है। इससे कम तापमान की आवश्यकता को कम किया जा सकता

है साथ ही भण्डारण में लगने वाले कीटों से भी मुक्त रखा जा सकता हैं।

भण्डारण में बीज को प्रभावित करने वाले कारक : फसल कटने के बाद अगर बीज का उचित ढंग से भण्डारण नही किया जावे तो उपज का लगभग 10 से 15 प्रतिशत बीज खराब हो जाता है। भण्डारण के दौरान बीज को मुख्य रूप से कीड़े जैसे–खपरा बीटल (ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम), आटे की सुरसरी (साईटोट्रोगा सेरेलेला), दालों का घुन (कैलोसोबुकस चाईनेन्सिस), चावल की मौथ (कोइसाहिरा सेफ्लोनिका), फंफूद, नमी व चूहे नुकसान पहुंचाते हैं। जिससे भंडारित बीज की अंकुरण क्षमता घट जाती है तथा बीज से दुर्गन्ध आने लग जाती है। इस प्रकार बीज की गुणवत्ता और मात्रा दोनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भण्डारण में कीटों का प्रकोप निम्न तीन प्रमुख वातावरणीय कारकों पर निर्भर करता है।

(i) **बीज में नमी की मात्रा :** भण्डारित बीज में कीटों का प्रकोप नमी की एक निश्चित प्रतिशत मात्रा से अधिक होने पर ही होता है। यदि भण्डारण से पूर्व बीज को धूप में अच्छी तरह से सुखाकर उसमें नमी की मात्रा को 8 से 10 प्रतिशत तक कर दिया जाये तो खपरा बीटल को छोड़कर अन्य कीटों का आक्रमण नही होता है। यदि सुखाने के बाद बीज को दांत से काटने पर कट की आवाज के साथ टूट जाये तो समझना चाहिए कि बीज भण्डारण के लिए उपयुक्त है।नमी रहित पैकेट में नमी को 4-5% तक कम करके सुरक्षित भण्डारण किया जा सकता है।

(ii) **भण्डारण संरचना में ऑक्सीजन की उपस्थिति :** कीटों को भी सांस लेने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। यदि बीज का भण्डारण वायुअवरोधी भंडार गृहों अथवा जी.आई. शीट से बने बिनों (कोटरों) में किया जाये तो उसमें उपस्थित ऑक्सीजन की मात्रा धीरे–धीरे कम होने लगती है, क्योंकि बीजों एवं कीटों दोनों को ही श्वसन की आवश्यकता होती है। कीटों द्वारा ऑक्सीजन का उपयोग बीज से 1,30,000 गुना ज्यादा है। यदि भण्डारण में ऑक्सीजन की मात्रा एक निश्चित सीमा से कम कर दी जाये तो कीट स्वतः ही मर जाते हैं। उदाहरण के लिये खपरा बीटल के लिए 16–18 प्रतिशत ऑक्सीजन का होना आवश्यक है।

(iii) **भण्डारण संरचना में तापमान का उतार–चढाव :** तापक्रम कीटों के जीवन चक्र को प्रभावित करने वाला तीसरा प्रमुख कारण है। साधारणतया 25°C-33°C तापक्रम कीटों के प्रजनन, संख्या वृद्धि एवं सक्रियता के लिए उपयुक्त होता है। जबकि 14.5°C से 18.3°C तक तापमान, कीटों की वृद्धि एवं सक्रियता के लिए अनुपयुक्त पाया गया है। इसी कारण जाड़े के दिनों में इनकी सक्रियता बहुत कम हो जाती है।

भण्डारण का उचित तरीका

(i) भण्डार गृह में चूहे के बिलों, दरारों या अन्य टूट–फूट को अच्छी तरह बंद करें। कांच को बारीक पीस कर सीमेंट या मिट्टी में मिलाकर दरारों या अन्य टूट–फूट को बंद करने के काम में लेवें।

(ii) सफाई, लिपाई–पुताई करने के बाद गोदाम में मैलाथियान दवाई का छिड़काव करें। एक हिस्सा मैलाथियान में 100 हिस्से पानी का (1:100) के घोल से कोठी, बुखारियों, बैलगाडियों, ट्रैक्टर–ट्रोली, और भण्डारण में उपयोग होने वाले अन्य औजारों पर भी छिडकाव करें।

(iii) भण्डारण से पहले बीज को अच्छी तरह साफ करके सुखा लें तथा ठंडा होने पर भण्डारण करें।

(iv) बीज भण्डारण के लिए धातु की कोठी, पक्की कोठी काम में लेवें। भण्डारण से पहले कोठियों की सफाई करें।

(v) पुराने और नए बीज को कभी एक साथ न रखें। पुराने और नए बीज को एक साथ रखने से कीड़े तेजी से बढ़ते हैं।

(vi) भण्डारण के समय कोठी के पेंदे में व बीज के ऊपर नीम की सुखी पत्ती या राख बिछाने से कीड़े नही लगते हैं।

(vii) कमरे, गोदाम में लकड़ी/प्लास्टिक के पट्टे या पोलिथीन शीट बिछाये, इसके ऊपर बीज की भरी हुई बोरियां रखें।

(viii) बीज की बोरियों को गोदाम या कमरे की दीवारों से लगभग एक फीट दूर रखें।

(ix) कमरे या गोदाम में बीज बिखरा हुआ ना छोड़ें।

(x) कोठी में रखे बीज को सुरक्षित स्थान पर रखकर भण्डारण के बाद अच्छी तरह बंद कर देवें।

(xi) बीज को मई–जून की धूप में तथा दिसंबर–जनवरी की ठंडी रात में सुखाने से तथा ऊंचाई से बरसाने पर भी कीड़े मर जाते हैं।

(xii) बोरियों को भण्डारण से पहले उल्टी करके धूप में सुखाये। मैलाथियान के एक प्रतिशत (1:100) घोल से उपचारित करे तथा बीज से भरी बोरियों को लकड़ी/प्लास्टिक के तख्तों पर दिवार से दूर रखें।

कमरे, गोदाम के रोशनदान या खिडकियों को बरसात के दिनों में न खोले। खुले मौसम व ठण्ड के दिनों में हवा दे।

खाद्यान्न फसलों में बायोफोर्टिफिकेशन (जैव-संवर्धन) की उपयोगिता

संध्या, मुकुल एवं मनोज कुमार
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं बीज अधिकारी, राजस्थान राज्य बीज निगम समिति, पन्त कृषि भवन, जयपुर

बायोफोर्टिफिकेशन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पौधों के प्रजनन, कृषि संबंधी और आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों सहित विभिन्न तरीकों से खाद्य फसलों के पोषण मूल्य को बढ़ाया जाता है। यह खाद्य दृढ़ीकरण से अलग है जिसमें प्रसंस्करण चरण के दौरान खाद्य फसलों की पोषण सामग्री में सुधार करना शामिल है। बायोफोर्टिफिकेशन में, फसलों के विकास के चरण के दौरान फसलों के पोषण मूल्य में सुधार होता है, यानी, उगाई जा रही फसल में सूक्ष्म पोषक तत्व अंतर्निहित होते हैं। चयनात्मक प्रजनन या आनुवंशिक इंजीनियरिंग के माध्यम से फसलों को जैव संवर्धित किया जा सकता है। भारत में, बायोफोर्टिफिकेशन विशेष रूप से चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से किया जाता है।

खाद्यान्न फसलें आवश्यक खनिज पोषक तत्वों का मुख्य स्रोत हैं। ये खनिज तत्व अस्तित्व और जीवन की निरंतरता की दौड़ के लिए मानव के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ फसलें कुछ खनिजों के लिए समृद्ध हैं और दूसरे की कमी है। अकेला कोई ऐसा पौधा नहीं जिसमें पृथ्वी से मानव के लिए सभी खनिज तत्व कुशलता से मौजूद हों। खनिज की कमी को 'छिपी हुई भूख' के रूप में भी जाना जाता है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चे की खराब वृद्धि और बिगड़ा हुआ मनोदैहिक विकास होता है, प्रतिरक्षा में कमी, थकावट, एनीमिया, चिड़चिड़ापन, कमजोरी, बालों का झड़ना, मांसपेशियों की बर्बादी, बाँझपन, रुग्णता और कभी–कभी मृत्यु हो जाती है।

बायोफोर्टिफिकेशन एक ऐसी आबादी को सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करने की एक आगामी, प्रभावी, उज्ज्वल, लागत प्रभावी और टिकाऊ तकनीक है, जिसकी विविध आहार और अन्य सूक्ष्म पोषक हस्तक्षेपों तक सीमित पहुंच है। बायोफोर्टिफिकेशन की सफलता में लाइसिन और ट्रिप्टोफैन से भरपूर क्यूपीएम (गुणवत्ता प्रोटीन मक्का), विटामिन ए से भरपूर संतरा, शकरकंद शामिल हैं। फसल प्रजनन, ओलिक एसिड और स्टीयरिडोनिक एसिड सोयाबीन संवर्धन द्वारा उत्पन्न आनुवंशिक परिवर्तन और सेलेनियम, आयोडीन और जिंक पूरकता के माध्यम से फसलों को जैव संवर्द्धित किया गया है। बायोफोर्टिफाइड खाद्य फसलें जो अनाज, फलियां, सब्जियां और फल हैं, लक्षित आबादी को पर्याप्त स्तर के सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान कर रही हैं। सूक्ष्म तत्वों में से, आयरन और जिंक खनिज की कमी सबसे आम और व्यापक है, जो मानव आबादी के आधे से अधिक को प्रभावित करती है।

मूल लक्ष्य : बायोफोर्टिफिकेशन का मूल लक्ष्य सूक्ष्म पोषक कुपोषण से संबंधित मृत्यु दर और रुग्णता दर को कम करना और विकासशील देशों में गरीब आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा, उत्पादकता और जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना है। बायोफोर्टिफिकेशन रिसर्च का फोकस आयरन, जिंक और विटामिन ए की कमी है। ये वो सूक्ष्म पोषक तत्व हैं जिनकी कमी दुनिया भर में सबसे ज्यादा लोगों को प्रभावित करती है। भारत में, बाजरा

तलिका 1: मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक सूक्ष्म और स्थूल पोषक तत्व

सूक्ष्म पोषण		स्थूल–पोषक तत्व		
सूक्ष्म पोषण	**विटामिन**	**अमिनो एसिड आवश्यक**	**वसा अम्ल आवश्यक**	**स्थूल–खनिज**
आयरन	ए (रेटिनॉल)	हिस्टडीन	लिनोलिक एसिड	पोटेशियम
जिंक	डी (कैल्सीफेरोल)	आइसोल्यूसीन	लिनोलेनिक एसिड	कैल्सियम
कॉपर	ई (टोकोफेरोल)	ल्यूसीन		मेगनीसियम
मेगनीज	के (फिलोक्विनोन)	लाइसिन		सल्फर
आयोडीन	सी (एस्कॉर्बिक एसिड)	मेथियोनीन		फोस्फोरस
सेलेनियम	बी 1 (थियामिन)	फेनिलएलनिन		क्लोराईड
मोलिब्डेनम	बी 2 (राइबोफ्लेविन)	थ्रेओनाइन		
कोबाल्ट	बी 3 (नियासिन)	ट्रिप्टोफैन		
नीकल	बी 5 (पैंटोथेनिक एसिड)	वेलिन		
	बी 6 (पाइरिडोक्सिन)			
	बी 7 (बायोटिन)			
	बी 9 (फोलिक एसिड)			
	बी 2 (कोबालिन)			

(आयरन), गेहूं (जिंक), ज्वार (आयरन), चावल (जिंक), लोबिया (आयरन) और दाल (आयरन और जिंक) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। वर्तमान में, भारत में किसानों के लिए बायोफोर्टिफाइड बाजरा, चावल और गेहूं उपलब्ध हैं।

बायोफोर्टिफिकेशन की तकनीक : परम्परागत प्रजनन और आनुवंशिक इंजीनियरिंग तकनीक प्रमुख दृष्टिकोण हैं जिनका उपयोग फसलों को आयरन और जिंक जैसे खनिजों के साथ जैव–मजबूत करने के लिए किया जा सकता है। बायोफोर्टिफिकेशन या जैव संवर्धन को मानव आबादी के लिए बढ़ी हुई जैव उपलब्धता के साथ पोषक रूप से संवर्धित खाद्य फसल कहा जाता है जो आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी उपकरणों, पारंपरिक पौधों के प्रजनन के तरीकों और कृषि संबंधी अभ्यास का उपयोग करके विकसित और उगाई जाती हैं। प्रमुख तकनीकें या तरीके जिनके द्वारा फसलों को बायोफोर्टिफाइड किया जा सकता है, उनका उल्लेख नीचे किया गया है।

कृषि संबंधी अभ्यास: इसमें मिट्टी की स्थिति में उगाए गए पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाने के लिए उर्वरकों का उपयोग शामिल है जो ऐसे सूक्ष्म पोषक तत्वों में कमी दर्शाती हैं।

पारंपरिक पादप प्रजनन: इसमें पारंपरिक प्रजनन विधियाँ शामिल हैं जिनके द्वारा फसलों में वांछित गुण के लिए पर्याप्त आनुवंशिक विविधताएँ उत्पन्न की जाती हैं जैसे कि किसी भी सूक्ष्म पोषक तत्व की उच्च सामग्री। इसमें कई पीढ़ियों में किस्मों को पार करना शामिल है ताकि अंततः अन्य अनुकूल लक्षणों के साथ उच्च पोषक तत्व वाले पौधे का उत्पादन किया जा सके। भारत में बायोफोर्टिफाइड फसलों के उत्पादन के लिए यही एकमात्र तरीका है। संकर किस्मों के विकास की निगरानी पोषण विशेषज्ञों द्वारा की जानी चाहिए ताकि यह जांचा जा सके कि पोषक तत्वों के उन्नत स्तर का उपभोक्ताओं द्वारा उपयोग किया जा सकता है या नहीं और ये स्तर खाद्य पदार्थों के भंडारण, प्रसंस्करण और पकाने से कैसे प्रभावित होते हैं।

जेनेटिक इंजीनियरिंग या आनुवंशिक संशोधन: इसमें किसी जीव के जीनोम में नई या विभिन्न विशेषताओं जैसे कि किसी भी बीमारी के लिए प्रतिरोधी होने के लिए डीएनए को सम्मिलित करना शामिल है। एक ही प्रजाति या अन्य प्रजातियों की जंगली फसल से जीन को शामिल करके एक फसल के आनुवंशिक मेकअप को बदलना जो कुछ पोषक तत्वों के बढ़ते उत्पादन के लिए कोड मेजबान फसल को पोषक तत्वों से समृद्ध बना सकता है। गोल्डन राइस सबसे शानदार उदाहरणों में से एक है, जो बीटा–कैरोटीन से समृद्ध है, जो विटामिन ए का अग्रदूत है।

बायोफोर्टिफिकेशन के लाभ : भारत में हरित क्रांति और संबंधित आंदोलन देश से भूख मिटाने पर केंद्रित थे। हरित क्रांति के परिणामस्वरूप, देश ने खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि की है और काफी हद तक आत्मनिर्भर है। सरकार द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न योजनाएं और उपाय किए गए हैं कि जनसंख्या को कैलोरी मान के संदर्भ में पर्याप्त भोजन मिले। हालांकि, वर्तमान ध्यान भोजन के सेवन की पोषक सामग्री को बढ़ाने पर है। 'पर्याप्त खाने' के बावजूद, बहुत से लोगों को उनके भोजन में पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिल रहे हैं। यह 'छिपी भूख' की समस्या का कारण बनता है। छिपी हुई भूख वह शब्द है जिसका उपयोग जिंक और आयरन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का वर्णन करने के लिए किया जाता है।

- कई शोधकर्ताओं के अनुसार, खाद्य फसलों में बायोफोर्टिफिकेशन लोगों में समग्र स्वास्थ्य सुधार प्राप्त करने में मदद करता है।
- ऐसी फसलें रोगों, कीटों, सूखे आदि के प्रति अधिक प्रतिरोधी होती हैं और बेहतर उपज प्रदान करती हैं।
- यह आयरन सप्लीमेंट्स के लिए भोजन–आधारित, टिकाऊ और कम खुराक वाला विकल्प प्रदान करता है।
- इसमें समाज के सबसे गरीब तबके (जो पूरक आहार का खर्च नहीं उठा सकते) तक पहुंचने की क्षमता है और इससे किसानों को भी लाभ होगा।
- यह अत्यधिक लागत प्रभावी है क्योंकि एक बार प्रारंभिक शोध हो जाने के बाद, प्रक्रिया को आसानी से दोहराया और बढ़ाया जा सकता है।
- गैर–आनुवंशिक रूप से संशोधित विधियों (जैसे भारत में किए गए पारंपरिक पौधों के प्रजनन) के माध्यम से किया गया बायोफोर्टिफिकेशन एक बेहतर विकल्प हैं।
- भारत जैसे देश में, जो भारी पोषण संबंधी चुनौतियों का सामना कर रहा है, बायोफोर्टिफिकेशन एक स्थायी, लागत प्रभावी तरीका है जो इस चुनौती को हल करने में मदद कर सकता है।

गेहूं प्रजनन : मुख्य फसल के रूप में गेहूँ बायोफोर्टिफिकेशन के लिए पहला और प्रमुख लक्ष्य है। गेहूँ और इसकी निकट से संबंधित जंगली प्रजातियों में अनाज के आयरने और जिंक सांद्रता में व्यापक भिन्नता देखी गई है कि इसका उपयोग आधुनिक कुलीन किसानों के सुधार के लिए किया जा सकता है। जेएयू, गुजरात से जीजेडब्ल्यू 463 किस्म की

सिफारिश सूक्ष्म पोषक तत्व आयरन, जिंक, मेगनीज और कॉपर सामग्री क्रमशः 31.9, 23.8, 22.4 और 5.9 पीपीएम, अच्छी चपाती बनाने की गुणवत्ता के साथ की गई। एचजीएच जिंक गेहूं की छह किस्में (बीएचयू 1, बीएचयू 3, बीएचयू 5, बीएचयू 6, बीएचयू 7 और बीएचयू 18) 2014 में भारत में जारी की गई। दो किस्मों बीएचयू1 और बीएचयू6 में उच्च जिंक के अलावा उच्च उपज, रोग प्रतिरोधक क्षमता है। पीएयू, भारत द्वारा उच्च जिंक (पीबी डब्ल्यु 1 जिंक) वाली किस्म जारी की गई है। हाल ही में, डब्ल्यू बी 02 और डीबीडब्ल्यू 173 (आईआईडब्ल्यू एंड बीआर, करनाल द्वारा 2017 और 2018 में), एचपीबीडब्ल्यू 01 (2017 में पीएयू, पंजाब द्वारा), पूसा तेजस (एचआई 8759) और पूसा उजाला (एचआई 1605) (2017 में इंदौर, द्वारा), पी बी डब्ल्यू 752, 757 (पीएयू, पंजाब द्वारा 2018 में), यूएएस 375 (धारवाड़ द्वारा 2018 में), करण वंदना (डीबीडब्ल्यू 187) (2018 और 202 में करनाल द्वारा), एचआई 8777 और एचआई 8802, 8805 (इंदौर, द्वारा 2018 और 2020 में), एचडी 3171 और एच डी 3249, 3298 (2017 और 2020 में नई दिल्ली द्वारा), एम ए सी एस 4028 और 4058 (पुणे द्वारा 2018 और 2020 में), डीबीडब्ल्यू 303 और डीडीडब्ल्यू 48 (आईआईडब्ल्यू एंड बीआर, करनाल द्वारा 2020 में), एच आई 1633 (इंदौर द्वारा 2020 में), डीडीडब्ल्यू 47 (करनाल द्वारा 2020 में), पीबीडब्ल्यू 771 (2020 में पीएयू, पंजाब द्वारा) उच्च जिंक और आयरन सामग्री के साथ किस्मों को विभिन्न भारतीय अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित और जारी किया गया है।

चावल प्रजनन : चावल में आयरन की प्राकृतिक भिन्नता काफी कम होती है और मिलिंग और पॉलिशिंग के परिणामस्वरूप आमतौर पर 80 प्रतिशत तक की हानि होती है क्योंकि आयरन को मुख्य रूप से एल्यूरोन परत में संग्रहीत किया जाता है न कि भरणपोषण में। विभिन्न जीनोटाइप के चावल में आयरन और जिंक की सांद्रता से पता चलता है कि उच्च खनिज चावल के सफलतापूर्वक प्रजनन के लिए आनुवंशिक क्षमता है। डीआरआर धान 45 (आईआईआरआर, हैदराबाद द्वारा 2016 में), सीआर धान 310 और सीआर धान 311 (एनआरआरआई, कटक द्वारा 2016 और 2018 में), डीआरआर धान 48, 49 (2018 में आईआईआरआर हैदराबाद द्वारा), जिंको राइस एमएस (2018 में रायपुर, भारत द्वारा) और सीआर धन 315 (एनआरआरआई, कटक द्वारा 2020 में) किस्मों को भारत द्वारा विकसित और जारी किया गया है।

मक्का प्रजनन : मक्का बायोफोर्टिफिकेशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि उच्च आवश्यक अमीनो एसिड लाइसिन और ट्रिप्टोफैन के साथ गुणवत्ता वाले प्रोटीन मक्का विवेक क्यूपीएम –9 है, जिसमें मक्का की खेती में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले मक्का से अपारदर्शी –2 उत्परिवर्ती जीन को शामिल किया गया है। अन्य उदाहरण शक्ति, रतन और प्रोटीन हैं जिनके पास नरम एंडोस्पर्म है तो शक्ति –1, शक्तिमान–1,2,3,4,5 और एचओपीएम–1,2,3,4,5, जिनके पास हार्ड एंडोस्पर्म या क्यूपीएम मतलब लाइसिन और ट्रिप्टोफैन अधिक है। विवेक क्यूपीएम 9 (2008 में अल्मोड़ा द्वारा), पूसा एचएम 4, 8,9 इम्प्रूव (2017 में नई दिल्ली द्वारा), पूसा विवेक क्यूपीएम 9 इम्प्रूव और पूसा वीएच 27 इम्प्रूव, पूसा एचक्यूपीएम 5, 7 इम्प्रूव (नई दिल्ली द्वारा 2017 और 2020 में) और आईक्यूएमएच 201, 202, 203 (लुधियाना द्वारा 2020 में) किस्मों को विभिन्न भारतीय अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित और जारी किया गया है।

बाजरा प्रजनन : बाजरा आयरन और जिंक का सबसे सस्ता स्रोत है और इन सूक्ष्म पोषक तत्वों के लिए इसके जर्मप्लाज्म में काफी भिन्नता रही है। जीएचबी–1255 किस्म जीएयू, जामनगर में विकसित की गई, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जिंक और आयरन होता है। भारत में, 2014 में आईसीआरआईएसएटी, हार्वेस्ट प्लस द्वारा बायोफोर्टिफाइड पर्ल बाजरा किस्म ''धनशक्ति'' और एक हाइब्रिड आईसीएमएच 1201 (शक्ति–1201) जारी किया गया है। एचएचबी 299 (2017 में हिसार और आईसीआरआईएसएटी, पतनचेरू द्वारा), एएचबी 1200 एफई और एएचबी 1269 एफई (2018 में प्रभनी और आईसीआरआईएसएटी–पतनचेरु द्वारा), एबीवी 04 (2018 में अनंतपुरमु द्वारा), फुले महाशक्ति (2018 में धुले द्वारा), आरएचबी 233 और 234 (जोबनेर द्वारा 2019 में), एचएचबी 311 (2020 हिसार द्वारा) किस्मों को भारत द्वारा विकसित और जारी किया गया है।

ज्वार प्रजनन : सूक्ष्म पोषक तत्वों और बीटा–कैरोटीन समृद्ध ज्वार के लिए प्रजनन की संभावनाओं पर कई चर्चा की गई है। ज्वार की किस्मों को उच्च खनिजों, प्रोटीन ल्यूटिन, जेक्सैन्थिन और बीटा–कैरोटीन सामग्री के लिए जांचा गया है। ज्वार जर्मप्लाज्म ने आयरन और जिंक सामग्री के लिए बड़ी परिवर्तनशीलता और अनुवांशिक आनुवंशिकता दिखाई है।

आलू प्रजनन : आलू कंद मानव आहार में एंटीऑक्सिडेंट का सबसे समृद्ध स्रोत हैं। आलू की कुफरी सीरीज में जिंक और आयरन की मात्रा ज्यादा होती है। कुफरी माणिक और कुफरी नीलकंठ (शिमला द्वारा 2020 में) किस्म को भारत द्वारा विकसित और जारी किया गया है।

लाल और बैंगनी रंगद्रव्य वाले आलू के जर्मप्लाज्म की प्राकृतिक विविधता संभवतः मानव पोषण में एंटीऑक्सीडेंट के हिस्से में आलू के योगदान का प्रतिनिधित्व कर सकती है। इसलिए, प्रजनकों का प्रयास ऐसे प्रकारों के प्रजनन पर केंद्रित है। इसके अलावा, आलू में सूक्ष्म पोषक तत्वों के लिए विशाल आनुवंशिक भिन्नता मौजूद है जिसका उपयोग प्रजनन के लिए मानव आहार में आयरन और जिंक के स्तर को और बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

टमाटर प्रजनन : टमाटर अत्यधिक मूल्यवान फसल है और विटामिन ए और सी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। टमाटर की आनुवंशिक रूप से विविध जंगली आबादी की विशिष्ट लक्षणों के लिए गहन जांच की गई है और टमाटर प्रजनन में इसका दोहन किया गया है। एंथोसायनिन बायोफोर्टिफाइड टमाटर ''सन ब्लैक'' के छिलके में उच्च एंथोसायनिन सामग्री के कारण गहरे बैंगनी रंग के फल रंजकता के साथ पारंपरिक प्रजनन तकनीक द्वारा विकसित किया गया है।

बायोफोर्टिफिकेशन चुनौतियां : बायोफोर्टिफिकेशन और भारत में दैनिक आहार के हिस्से के रूप में बायोफोर्टिफाइड खाद्यान्न को पेश करने में आने वाली कुछ चुनौतियों की चर्चा नीचे की गई है।

- अनाज में रंग परिवर्तन के कारण लोग बायोफोर्टिफाइड भोजन को स्वीकार करने से हिचकिचाते हैं जैसे कि सुनहरे चावल के मामले में होता है।
- किसानों को भी इसे बड़े पैमाने पर अपनाना चाहिए।
- लोगों को लागू करने के लिए शुरुआती लागत भी एक बाधा हो सकती है।

निष्कर्ष : पादप प्रजनन और आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा अनाज के दानों का पोषक जैव संवर्धन (फसलों का बायोफोर्टिफिकेशन) 'छिपी हुई भूख' को दूर करने के लिए एक संभव और सबसे किफायती तरीका है। सरकार ने सभी अनुसंधान केंद्रों में पोषक तत्वों की अधिक विविधता के विकास पर ध्यान केंद्रित किया है। पादप प्रजनकों के बीच सहयोग के लिए पोषण वैज्ञानिक, आनुवंशिक अभियांत्रिकी और आणविक जीवविज्ञानी आवश्यक हैं। पारंपरिक प्रजनन तकनीकों को व्यापक और आसान स्वीकृति मिल रही है और खाद्य पदार्थों के पोषण गुणों को बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया गया है। बायोफोर्टिफाइड फसलें बहुत उज्ज्वल भविष्य रखती हैं क्योंकि खासकर भारत जैसे विकासशील देश के गरीब लोगों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने की क्षमता होती है।

मुख्य फसलें जिनमें बायोफोर्टिफिकेशन लागू किया गया है

जैविक खेती में समन्वित कीट प्रबंधन के सिद्धान्त एवं विधियाँ

गौरांग छंगाणी, लेखा एवं सुरेश कुमार जाट
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

जैविक खेती में कीट प्रबंधन हेतु नाशीजीवों की बहुतायत एवं नुकसान को ध्यान में रखते हुए निम्न सिद्धांतों पर आधारित विभिन्न प्रणालियों द्वारा उनका स्तर आर्थिक नुकसान सीमा से नीचे रखने का प्रयास किया जाता है।

1. **स्वास्थ्य का सिद्धांत :** जैविक कृषि का सिद्धांत मृदा, पौधों, जानवरों, मनुष्यों और पृथ्वी के समन्वित स्वास्थ्य को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण योगदान है। जैविक कृषि की मुख्य भूमिका कृषि, प्रसंस्करण, वितरण एवं खपत को बनाए रखना एवं रासायनिक खादों, कीटनाशियों एवं विभिन्न पीड़कनाशियों का कम से कम अथवा प्रयोग नहीं करते हुए कृषि उत्पादों की गुणवत्ता व उत्पादकता को बढ़ाना है। तथा साथ ही मृदा स्वास्थ्य, पारिस्थितिकी एवं सूक्ष्म जीवों का संरक्षण करना है।

2. **पारिस्थितिकी का सिद्धांत :** जैविक कृषि में सामान्य वातावरणीय परिस्थितियाँ जैसे – जलवायु, आवास, जैव विविधता, जैव पारिस्थितिकी, जल एवं वायु को ध्यान में रखते हुए ऐसी फसल प्रणालियों का प्रयोग करते हैं, जिससे पारिस्थितिकी संतुलन एवं कृषि विविधता उचित बनी रहती है।

3. **निष्पक्षता का सिद्धांत :** जैविक कृषि में पर्यावरण और जीवों के मध्य सम्बन्धता में सुनिश्चितता पर कृषि प्रणाली का निर्माण करना है। इस सिद्धांत के अनुसार पर्यावरणीय संसाधनों का प्रयोग करते हुए उत्पादकता को बढ़ाना है तथा साथ ही मृदा का स्वास्थ्य एवं पारिस्थितिकी संतुलन को भी उचित अवस्था में बनाए रखना है।

4. **देखभाल का सिद्धांत :** जैविक कृषि वर्तमान, भविष्य की पीढ़ियों एवं पर्यावरण स्वास्थ्य की रक्षा के लिए एक जिम्मेदार तरीकों से प्रविधित की जानी चाहिए।

जैविक खेती कृषि विधि मे संश्लेषित उर्वरकों व कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है, जिससे इनसे होने वाले दुष्प्रभाव से बचा जा सके। जैविक खेती के अन्तर्गत कीटनाशकों का प्रयोग किये बिना अन्य प्रणालियों द्वारा कीटों की जनसंख्या की वृद्धि एवं प्रकोप को रोका जाता है। इसके अन्तर्गत पौधो के उत्पाद, सूक्ष्मजीव (बैक्टेरिया, विषाणु, कवको, सुत्रकृमि, प्रटोजोआ आदि) व शत्रुकीट का प्रयोग किया जाता है। यह पर्यावरण पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ते। जैविक खेती में कीटो के प्रबंधन हेतु विभिन्न घटक निम्न हैं।

1. **सस्य विधियाँ :** इन विधियों के अन्तर्गत परम्परागत अपनायी जाने वाली कृषि क्रियाओं में थोड़ा सा परिवर्तन करके (कम या जोड़कर) कीटों के आक्रमण को कम किया जा सकता है।

- **ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई :** बहुत से कीट अपनी कोषावस्था या अन्य कोई अवस्था जमीन में व्यतीत करते है। अतः ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करके उन्हें नष्ट किया जा सकता है। जुताई से कीट बाह्य वातावरण में आ जाते है जहाँ पर तेज गर्मी या प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिये जाते है।
- **खेत की साफ–सफाई :** फसल कट जाने के बाद भी बहुत से कीट उन्ही में अपना जीवन निर्वाह करते है। यदि फसल के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दिया जाये तो उनमें रह रहे कीट नष्ट हो जायेंगे। तथा खरपतवारों को नष्ट करने से कुछ कीटों के वैकल्पिक पोषक पौधों को कम किया जा सकता है। यदि समय–समय पर पौधो की ढीली व मरी हुई छाल को निकालते रहे तथा उनकी जड़ों के पास सफाई रखे तो कई प्रकार के कीटों के प्रकोप से बचा जा सकता है।
- **फसल के बोने के समय में थोड़ा परिवर्तन करके :** प्रायः प्रत्येक कीट के आक्रमण का अपना निश्चित समय होता है। अतः फसल बोने के समय में थोड़ा परिवर्तन करके फसल को कीट प्रकोप से बचाया जा सकता है। क्योकि जब कीट प्रकट होगे उस समय पौधा बड़ा तथा आक्रमण सहन करने की क्षमता पर पहुँच चुका होगा।
- **फसल चक्र :** एक ही फसल अथवा एक ही कुल की फसलों को लगातार एक ही स्थान अथवा क्षेत्र में बोते रहने से उनमें लगने वाले कीटों का प्रकोप हर साल प्रायः बढ़ता जाता है, क्योंकि कीटों को निरन्तर भोजन मिलता रहता हैं। अतः फसलों को हेर–फेर कर बोया जाये तो कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता हैं।
- **कीट प्रतिरोधी व उच्च गुणवत्ता वाली फसल जातियाँ :** कीटों के प्रकोप को सहन करने वाली फसल जातियों का प्रयोग करना चाहिए।
- **स्वस्थ व साफ बीज :** स्वस्थ एवं साफ बीजों को बोना चाहिए ताकि अगली फसल में बीज द्वारा कीटों का विस्तार न हो।
- **सिंचाई :** भूमि में अधिक नमी कीटों की संख्या को बढ़ावा देती हैं। अतः फसल में निश्चित मात्रा में व समय पर सिंचाई करनी चाहिए।
- **खाद व उर्वरक :** खाद व उर्वरक का समुचित प्रबंधन करते हुए कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। क्योंकि उर्वरक की अधिक मात्रा कीटों की संख्या में वृद्धि करती है।
- **बीज की मात्रा व दूरी :** उचित बीज दर व उचित दूरी का समुचित प्रबन्ध करते हुए कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
- **निराई–गुड़ाई एवं जल निष्कासन :** बहुत से कीट अपनी कोषावस्था या अन्य कोई अवस्था जमीन या खरपतवार वैकल्पिक पौधों में व्यतीत करते हैं। अतः उस समय निराई–गुड़ाई करके उन्हे नष्ट किया जा सकता है। खेत में जल निष्कासन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि जल भराव वाली जगह कीटों का प्रकोप अधिक होता है।
- **मिश्रित फसल व अन्तरशस्य :** मिली जुली फसलों के बोने से एक ही प्रकार के पौधों की आपस में दूरी बढ़ जाती है। अतः कीट एक पौधे से दूसरे पौधे पर आसानी से नहीं पहुँच पाते, अतः उनका प्रकोप कम हो जाता है।
- **आकर्षक फसल लगाना :** मुख्य फसल के साथ आकर्षक फसल के रूप में उसी कुल की दूसरी फसल लगाना चाहिए ताकि मुख्य फसल को कीट प्रकोप से बचाया जा सके। बाद में आकर्षक फसल को नष्ट कर दे।

- **सीमा फसल :** मुख्य फसल के चारो और सीमा फसल के रूप में अन्य फसल को बोकर भी मुख्य फसल पर कीट प्रकोप को कम किया जा सकता है।
- कुछ कीट ऐसे होते हैं जिनको अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए दो प्रकार के पोषक पौधों की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में दूसरे पोषक पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।
- शत्रु कीटों को बढ़ावा देने के लिए रिजका, बरसीन, चवला आदि लगाएं।
- जब दानों में 8–10 प्रतिशत से कम नमी हो तभी भण्डारित करे। 10 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर भण्डारित कीटों का प्रकोप अधिक होता है।

2. **यांत्रिक नियंत्रण :** कीटों को किसी यन्त्र की सहायता से या विधि से मारने की क्रियायें इस नियंत्रण के अन्तर्गत आती हैं।

- **हाथ द्वारा कीटों को एकत्रित करना :** इसमें कीटो की विभिन्न अवस्थाओं व उनसे क्षतिग्रस्त पौधों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट किया जाता हैं। यह विधि ऐसे कीटों के लिए विशेष उपयोगी है जो अण्डे समूह में देते है या जो एक साथ एक स्थान पर खाते रहते हैं।

- **हस्त जालो द्वारा पकड़ना :** उड़ने वाले कीटों को कपड़े या प्लास्टिक के जालो द्वारा पकड़कर नष्ट किया जा सकता है तथा इस प्रकार उनकी वृद्धि रूक जाती है।

- **यांत्रिक रोकथाम :** इस प्रकार की विधि में कीटों को उनके भोजन तक न पहुँचने के लिए कुछ उपाय किये जाते है। जैसे –

  पट्टी बाँधना : इस विधि में पेड़ के तने के चारो ओर धातु की एक चिपचिपी पट्टी बाँधते है। जिससे रेंगकर चढने वाले कीट पेड़ो पर नहीं चढ पातें।

  खाई खोदना : कूदने व रेंगने वाले कीटो को रोकने के लिए खेत के चारों ओर गहरी खाई खोद कर उसमें पानी भर देते है। ताकि कीट खाई में गिरकर पानी में डुबकर मर जाए।

- **यांत्रिक प्रपंच :** कीटों को नियंत्रित व मारने के लिए कई प्रकार के प्रपंच काम में लिए जाते है।
  प्रकाश प्रपंच : रात्रि के समय प्रकाश के प्रति आकर्षित होने वाले कीटो के लिए 4–5 प्रति हैक्टेयर की दर से प्रकाश प्रंपच का उपयोग किया जाता है।
  चिपचिपे प्रपंच : इस प्रकार के प्रंपच पर गोद जैसा चिपचिपा पदार्थ लगा होता है। इनको खेतो में 10–12 प्रति हैक्टेयर की दर से अन्य साधनों की सहायता से लटका देते है। कई प्रकार के कीट उड़कर इनमें चिपक कर मर जाते है।
  फेरोमान प्रपंच : इस प्रकार के प्रपंच में नर कीटों को आकर्षित करने के लिए 5–6 फेरोमेन प्रति हैक्टेयर की दर से प्रलोभों का प्रयोग किया जाता है।
  पक्षी आश्रय : कीटशत्रु पक्षियों को खेत में बैठने के लिए T आकार की डण्डियां 20–25 प्रति हैक्टैयर की दर से लगाई जाती है।

3. **भौतिक नियन्त्रण :** इस नियंत्रण के अन्तर्गत कीटों को मारने के लिए भौतिक साधनो जैसे तापक्रम, नमी, प्रकाश, ध्वनि और बिजली का प्रयोग करते है।

- **तापक्रम :** कृत्रिम रूप से अनाज को गर्म या ठंडा करना एक प्रचलित कीट नियंत्रण का साधन है।
  कम तापक्रम : प्रायः 40 से 60 फोरेनहाइट्स पर सभी कीट निष्क्रिय हो जाते हैं।
  उच्च तापक्रम : 140 से 160 फोरेनहाइट्स के ऊपर कोई भी कीट जीवित नहीं रह पाते।
- **आर्द्रता :** अनाजों को सुखाकर इनकी नमी 10 प्रतिशत से कम कर देने पर कीटों का आक्रमण नहीं हो पाता।

4. **जैविक नियन्त्रण :** हानि पहुंचाने वाले कीटों को नियंत्रित करने अथवा मारने के लिए उनके प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग करना जैविक नियंत्रण कहलाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के शत्रुकीट जैसे परभक्षी, परजीवी व परजीव्याभ जीवो का उपयोग किया जाता है।जैसे– शिकारी पृष्ठ स्तनधारी जीव–सर्प, मछलियां, मेंढक, पक्षी, छिपकली आदि।

5. **जैव कीटनाशी का उपयोग :** इस प्रणाली के अन्तर्गत कीटों को मारने के लिए ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। जो मनुष्य, लाभदायक जीव व पर्यावरण पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ते है। इसके अन्तर्गत वानस्पतिक उत्पाद जैसे– नीम, करंज, बबुल, महुआ, इमली, तम्बाकु, सीताफल आदि की पत्तियां व बीज, सूक्ष्मजीव उत्पाद (बैक्टेरिया, कवक, वाइरस, सुत्रकृमि, प्रोटोजोआ आदि) कीटनाशक उत्पाद जैसे एस.एल.एन.पी.वी. (SINPV) व एच. ए.एन.पी.वी. (HaNPV) 250 एल.ई. प्रति हैक्टेयर की दर से लेपिडोप्टेरन कीटो के लिए, वानस्पतिक तेल भण्डारित कीटो के लिए, नवीन कीटनाशक जैसे इमिडाक्लोपरिड, थायोमिथाक्जैम, फिपरोनिल, इस्पाइनोसेड, आदि आते है। इनका उपयोग कीट प्रबंधन के लिए करके, रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है।

   धूल जैसे – डाइटोमेसिअस अर्थ, फ्लाई राख, गाय के गोबर की राख, चावल के छिलके की राख आदि, वानस्पतिक तेल व पौधो के उत्पाद जैसे सीताफल, नीम, बबुल आदि की पत्तिया, बीज व खाद्य व अखाद्य तेल का प्रयोग भण्डारित अनाज के लिए किया जाता है।

6. **परम्परागत नाशीकीट प्रबंधन प्रणालियां**

- 10 किलोग्राम पीसी हुई नीम की पत्तियों को 24 घंटे तक 1 लीटर पानी में भिगोकर रखे व 1/2–1 घंटे गर्म कर एक रात ठंडा करें व 200 लीटर पानी में घोल को बनाकर पत्ती मोड़क कीट के नियंत्रण हेतु सब्जियों पर छिड़काव करें।
- 300 मि.ली. नीम तेल, 250 मि.ली. केरोसिन व 50 ग्राम साबुन अथवा शैम्पू को 160 लीटर पानी के साथ मिलाकर सुबह के समय पत्ती व पुष्प खाने वाले कीट प्रबन्धन हेतु सब्जियों की फसल पर छिड़काव करें।
- जीवाणु, कवक व विषाणु से होने वाली बीमारी व रस चूसने वाले कीट

तथा भूमि में रहने वाले कीट की रोकथाम के लिए 25–30 ग्राम लहसुन को पीसकर 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

- आक की पत्तियों को बोरे मे भरकर खेत मे सिंचाई की नाली में रखें व उससे निकलने वाले रस का प्रयोग दीमक प्रबंधन हेतु किया जाता है।
- तम्बाकू की पत्तियों का चूर्ण चूने के साथ गर्म पानी में रात्रि भर के लिए रख दें तथा सुबह इसको छानकर रस चुसने वाले कीटों के प्रबन्धन हेतु छिड़काव करें।
- सूंडियो को नियंत्रित करने के लिए महुआ व ईमली की छाल को बराबर मात्रा में भिगोकर मिश्रण तैयार करें व क्षतिग्रस्त सब्जियों की फसल पर छिड़काव करें।
- गौमूत्र व गाय का गोबर के मिश्रण को 2–3 दिन तक सड़ाकर रखे व छानकर छिड़काव में प्रयोग करें जिससे उत्पन्न हुए वृद्धि निरोधक तत्व कीट वृद्धि को प्रभावित करेंगे।
- मिली बग की रोकथाम करने के लिए ताजा गाय के गौबर को गौमूत्र के साथ मिलाकर 2–3 दिन सड़ने दे व उसके बाद छानकर छिड़काव करें।
- सुंडियो की रोकथाम के लिए 3–5 लीटर गौमूत्र बराबर मात्रा मे गाय के गोबर के साथ मिलाकर 4 दिन तक रखें व इस मिश्रण को छानकर 250 ग्राम बुझा चूना मिलायें व 50–80 लीटर पानी में मिश्रण तैयार कर 1 एकड़ में छिड़काव करें।

ट्राइकोडर्मा के उपयोग की विधियाँ

1. **बीज उपचार :** फसल के बीजों को साफ बर्तन में रखकर थोड़े पानी के छीटें देवें। ट्राइकोडर्मा कल्चर 6 से 8 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजों में इस तरह मिला दें, जिससे सभी बीजों पर एक समान परत बन जाये। उपचारित बीज को छाया में सुखाकर बुवाई करें।

2. **भूमि उपचार :** एक हैक्टेयर भूमि के लिए 2.5 किलोग्राम कल्चर को 100 किलोग्राम सड़े गोबर की खाद में मिलाकर अन्तिम जुताई के समय भूमि में मिला देवें।

3. **जड़ उपचार :** प्रत्यारोपित करने वाली पौध के लिए 1 किलोग्राम कल्चर को 5 लीटर पानी में अच्छी तरह घोलकर, पौधे की जड़ों को इस घोल में 20 से 30 मिनट डूबोकर लगावें।

परभक्षी कीट : मेन्टिस, लेसविंग बग्स, ड्रेगन फ्लाई, कोक्सीनेलिड़स, क्राइसोपरला स्पीशीज, सिरफिड्स, रोडोलिया कार्डीनेलिस, कोटनी कुशन स्केल आदि।

क्र.सं.	परभक्षी	प्रबंधित कीट प्रजाति
1.	कोक्सीनेला सेपटमपंक्टाटा	एफिड्स
2.	क्राइसोपर्ला कारनिया	रसचूसक कीट जैसे एफिड, जैसिड,
		सफेद मक्खी आदि।
3.	मेनोचिलस सेक्समेकुलेटस	एफिड्स
4.	ब्रुमस सुचुरेलिस	एफिड्स
5.	प्रेइंग मेनटिस	हानिकारक कीट
6.	एन्थरोईड बग्स	हानिकारक कीट
7.	रेडुविडी बग्स	हानिकारक कीट
8.	मकड़ी	हानिकारक कीट

परजीव्याभ : ट्राइकोग्रामा चिलोनीस, कम्पोलिटिस क्लोरिडी, टेलेनोमस स्पीशीज, अपेनटेलस स्पीशीज आदि।

क्र.सं.	परजीव्याभ	प्रबंधित कीट प्रजाति
1.	ट्राईकोग्रामा चिलोनीस/50,000–1,00,000 प्रति हैक्टेयर	फल छेदक कीट
2.	ट्राईकोग्रामा जापोनीकम/50,000–1,00,000 प्रति हैक्टेयर	फल छेदक कीट
3.	कम्पोलेटिस क्लोरिडी/50,000–1,00,000 प्रति हैक्टेयर	फल छेदक कीट
4.	कोटेशिया फ्लेविपेस/1,00,000–1,50,000 प्रति हैक्टेयर	फल छेदक कीट
5.	ऐपन्टेलीस टेरागामी/50,000–1,00,000 प्रति हैक्टेयर	पत्ती खाने वाली लट
6.	साइटेलिया फ्लेचेरी/50,000–1,00,000 प्रति हैक्टेयर	तरबुज फल मक्खी

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक खेती की ओर बढ़ते कदम

अर्जुन सिंह जाट, सुमित्रा देवी बम्बोरिया एवं बलदेव राम
कृषि विज्ञान केंद्र, मौलासर एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

प्राकृतिक खेती कृषि की प्राचीन पद्धति है। मूल रूप से यह एक जीवन पद्धति है जो पूरी तरह अहिंसक खेती है। इसमें मानव की भूख मिटाने के साथ समस्त जीव–जगत के पालन का विचार है। इससे मिट्टी–पानी का संरक्षण भी होता है। प्राकृतिक खेती में बीज के अलावा बाहरी चीजों का उपयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार की खेती में जो तत्व प्रकृति में पाए जाते हैं, उन्हीं को खेती में पौषक तत्व, कीटनाशक एवं फफूंदनाशक के रूप में काम में लिया जाता है। यह पूरी तरह से पर्यावरणरक्षी खेती है।

भारत में हरित क्रांति सन् 1965 में उन्नत बीज, रसायनिक उर्वरक एवं समुचित सिंचाई जल के प्रयोग से आयी जिससे उत्पादन तो बढा परन्तु रसायनिक उर्वरकों तथा अन्य कीटनाशकों के अत्याधिक अंधाधुंध प्रयोग से मिट्टी की उत्पादकता कम होती चली गयी। वर्तमान में महंगे रसायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों ने खेती की लागत को काफी बढ़ा दिया है जिससे अब समझ आने लगा है कि इस तरह की खेती कर के हम अपनी मिट्टी, हवा, पानी और स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे है। प्राकृतिक खेती में केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं व संसाधनों का ही प्रयोग होता है। कुदरती खेती प्रकृति के साथ होती है। यद्यपि प्राकृतिक खेती की शुरूआत जापान के कृषि वैज्ञानिक फुकुओवा ने की थी लेकिन हमारे यहां भी ऐसी खेती होती रही है। मंडला के बैगा आदिवासी बिना जुताई की खेती करते है जिसे झूम खेती कहते है। इन खेतों में पुआल, नरवाई, चारा, तिनकाव व छोटी–छोटी टहनियों को पड़ा रहने देते है, जो सड़कर जैव खाद बनाती है। खेत में तमाम छोटी–बड़ी वनस्पतियों के साथ जैव विविधताएं आती–जाती रहती है। यहां जमीन को हमेशा ढककर रखा जाता है। इस ढकाव के नीचे अनगिनत जीवाणु, केंचुए और कीड़ें–मकोड़ें रहते है और उनके ऊपर–नीचे आने–जाने से जमीन पोली और हवादार व उपजाऊ बनती है। बारिश में कितना भी पानी गिरे, वह खेत के बाहर नहीं जाता। खेतों में जो खरपतवार, झाड़–झंकाड़ या पेड़ होते है, वे पानी को सोखते है। इससे एक और खेतों में नमी बनी रहती है, दूसरी और वह पानी वाष्पीकृत होकर बादल बनता है और बारिश के रूप में बरसता है। प्राकृतिक खेती विपरीत जब जमीन की जुताई की जाती है और उसमें पानी दिया जाता है तो खेत में कीचड़ हो जाता है इसी तरह वर्षा होने पर पानी खेत में नीचे नहीं जा पाता और तेजी से बहता है। इससे पानी के साथ खेत की उपजाऊ मिट्टी बह जाती है। इस तरह हम मिट्टी की उपजाऊ परत को बर्बाद कर रहे है और भूजल का पुनर्भरण भी नहीं कर पा रहे है। यही कारण है कि वर्ष दर वर्ष भूजल नीचे चला जा रहा है और जगह–जगह पानी की दिक्कत पैदा हो गयी है।

प्राकृतिक खेती के सिद्धांत

1. **पहला सिद्धांत :** खेतों में जुताई नहीं करना यानी न तो उनमें जुताई करना और न ही मिट्टी पलटना। सदियों से किसानों ने यह सोच रखा है कि फसलें उगाने के लिए हल अनिवार्य है। लेकिन प्राकृतिक कृषि का बुनियादी सिद्धांत खेत को नहीं जोतना है। धरती अपनी जुताई स्वयं स्वाभाविक रूप से पौधों की जड़ों के प्रवेश तथा केंचुओं व छोटे प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के जरिए कर लेती है।
2. **दूसरा सिद्धांत :** किसी भी तरह की तैयार अकार्बनिक खाद या रसायनिक उर्वरकों का उपयोग न करना। इसमें पहली फसल के अवशेष ही खाद का काम करते है।
3. **तीसरा सिद्धांत :** निराई गुड़ाई नहीं करना। इसका बुनियादी सिद्धांत यह है कि खरपतवार को पूरी तरह समाप्त करने की बजाय नियंत्रित किया जाना चाहिए।

जैविक और प्राकृतिक खेती में अन्तर

जैविक खेती में जैविक खादें जैसे–कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, गोबर की खाद व गाय के उत्पाद आदि का उपयोग किया जाता है जबकि प्राकृतिक खेती में मिट्टी में न तो रासायनिक और न ही जैविक खाद डाली जाती है। वास्तव में बाहरी उर्वरक का प्रयोग न तो मिट्टी में और न ही पौधों में किया जाता है।

प्राकृतिक खेती के लाभ

- रासायनिक खाद पर निर्भरता नहीं होने से लागत में कमी आती है।
- जैविक खादों के प्रयोग से मृदा का जैविक स्तर बढ़ता है, जिससे लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है और मृदा काफी उपजाऊ बनी रहती है।
- जैविक खाद पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ प्रदान कराते हैं, जो मृदा में मौजूद सूक्ष्म जीवों के द्वारा पौधों को मिलते हैं जिससे पौधे स्वस्थ बनते हैं और उत्पादन बढ़ता है।
- कम पानी की जरूरत होती है।
- जैव विविधता बनी रहती है।
- वातावरण सुरक्षित रहता है।
- भोजन विषहीन एवं स्वादिष्ट होता है।

प्राकृतिक खेती करने का तरीका

कृषि लागत आदान सामग्री की खरीदारी पर किसानों की निर्भरता को

कम करने और परंपरागत क्षेत्र आधारित प्रौद्योगिकियों पर भरोसा करते हुए प्राकृतिक खेती की वैकल्पिक साधन के रूप में पहचान की गई है, जिससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार को बढ़ावा मिलता है। देसी गाय, उसका गोबर और मूत्र इस खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, जिससे विभिन्न कृषि लागत सामग्री खेतों में ही बन जाती है, जो खेत को आवश्यक तत्व उपलब्ध कराते है। अन्य पारंपरिक प्रथाएं जैसे बायोमास के साथ मिट्टी में गीली घास डालना या मिट्टी को पूरे साल हरित आवरण से ढक कर रखना, यहां तक कि बहुत कम पानी की उपलब्धता की स्थिति में भी ऐसे कार्य किए जाते है जो पहले साल से ही सतत् उत्पादकता सुनिश्चित करते है। प्राकृतिक खेती में विशेषकर खेत पर आदान तैयार कर उपयोग में लिये जाते है जो निम्न प्रकार है।

जीवामृत : प्राकृतिक कृषि प्रक्रिया ही धरती का अमृत है। प्रयोगों से पता चला है कि 10 किलोग्राम गोबर के साथ गौमूत्र, गुड़, आटा और बेसन आदि को मिलाकर जो मिश्रण बनता है, वही जीवामृत है। जीवामृत बनाने के लिए 10 किग्रा. देशी गाय का गोबर, 8–10 लीटर देसी गाय का मूत्र, 1.5 से 2 किग्रा. गुड़, 1.5 से 2 किग्रा. बेसन, 180 लीटर पानी, मुट्ठीभर पेड़ के नीचे की मिट्टी को मिश्रित कर तरल–सा बना लें। अब इन सामग्रियों को एक ड्रम में डालकर लकड़ी के डंडे से घोलना है। अच्छी तरह से घोलने के बाद जीवामृत बनाने के लिए दो से तीन दिन तक ढककर छाया में रख देना है तथा प्रतिदिन लकड़ी के डंडे से इसे दो मिनट तक घुमाकर बोरे से ढक देना है। फलों के पेड़ों के पास दोपहर 12 बजे जो छाया पड़ती है, उस छाया के पास प्रति पेड़ 2 से 5 लीटर जीवामृत महीने में एक या दो बार गोलाकार में डालना है। इससे मिट्टी स्वस्थ बनती है और फलों के पेड़ भी अच्छे होते है।

जीवामृत के लाभ : इस जीवामृत को जब सिंचाई के साथ खेत में डाला जाता है तो भूमि में जीवाणुओं की संख्या अविश्वसनीय तरीके से बढ़ जाती है और भूमि के रासायनिक व जैविक गुणों में वृद्धि होती है। जीवामृत को महीने में एक या दो बार उपलब्धता के अनुसार 200 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से सिंचाई के पानी के साथ देना होता है। इससे किसानों के मित्र माने जाने वाले केंचुओं की संख्या बढ़ती है।

घनजीवामृत : यह जीवामृत का ही सूखा रूप है, जिसको फसल की बुवाई से पहले जमीन में मिलाया जाता है। धूप में सुखाए गए 200 किग्रा. गोबर में ताजा बना 20 लीटर जीवामृत मिलाकर दो दिन छाया में रखते है। इसे एक बार पुनः धूप में सुखाकर एवं डंडे से कुटकर महीन बना दिया जाता है। यही घनजीवामृत है जिसे एक एकड़ में प्रयोग कर सकते है।

पंचगव्य : पंचगव्य का अर्थ है पांच तत्व अर्थात गौमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी के मिश्रण से बनाये जाने वाले पदार्थ को पंचगव्य कहते हैं। प्राचीन

समय में इसका उपयोग खेती की उर्वरक शक्ति को बढ़ाने के साथ–साथ पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए किया जाता था। पंचगव्य एक अत्यधिक प्रभावी जैविक खाद है जो पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायता करता है और उनकी प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाता है। पंचगव्य का निर्माण देसी गाय के पांच उत्पादों से होता है क्योंकि देशी गाय के उत्पादों में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व पर्याप्त व सन्तुलित मात्रा में पाये जाते हैं। पंचगव्य तैयार करने के लिए गाय के गोबर का घोल 4 किग्रा., गाय का गोबर 1 किग्रा, गौ–मूत्र 3 लीटर, गाय का दूध 3 लीटर, छाछ 2 लीटर और गाय का घी 1 किग्रा. को मिलाकर 7 दिन तक सड़ने (किण्वन) देवें और प्रतिदिन 2 बार हिलायें। 3 लीटर पंचगव्य को 100 लीटर पानी में घोलकर मृदा पर छिड़काव करें। 20 लीटर पंचगव्य सिंचाई जल के साथ एक एकड़ मृदा हेतु उपयुक्त है। इसी तरह समृद्ध पंचगव्य को बनाने के लिये 1 किग्रा. ताजा गाय का गोबर, 3 ली. गौ–मूत्र, 2 ली. गाय का दूध, 2 ली. छाछ, 1 ली. गाय का घी, 3 ली. गन्ना रस, 3 ली. नारियल पानी तथा 12 पके केलों की लुगदी मिलाकर 7 दिन तक सड़ने दें। प्रयोग विधि पंचगव्य की तरह ही है।

अमृत पानी : 500 ग्राम शहद के साथ 10 किग्रा. गाय के गोबर को मिलाकर लकड़ी की सहायता से तब तक फेंटे जब तक वह लुगदी जैसा न हो जाये, इसके बाद इसमें 250 ग्राम गाय का देशी घी ड़ालकर तेजी से मिलाये। इसे 200 लीटर पानी में मिलाकर घोल लें। इस घोल को एक एकड़ जमीन पर छिड़क दें या सिंचाई के साथ देवे। 30 दिनों के बाद दूसरी खुराक के रूप में पौधों की कतारों के बीच में छिड़के या सिंचाई वाले पानी के साथ फैला दें।

बीजामृत : प्राकृतिक खेती का एक आवश्वयक आधार बीजामृत है जो बीज को बीज जनित रोगों से बचाता है इसके साथ ही अंकुरण क्षमता को भी बढ़ाता है। देसी गाय का 5 किग्रा. गोबर, 5 लीटर गौमूत्र, 50 ग्राम बुझा हुआ चूना और थोड़ी सी मिट्टी को 20 लीटर पानी में मिलाकर

बीजामृत बनता है। एक रात रखने के बाद इस में 10 किग्रा. बीज का प्रसंस्करण किया जाता है। अगले दिन बीज बुवाई के लिए तैयार हो जाता है।

आच्छादन : यह प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण नियम है। खेती वाली सम्पूर्ण भूमि को फसल अवशेष से या छोटी अवधि वाली अंतर फसलों से पूरा ढक दिया जाता है। आच्छादन भूमि में नमी बनाए रखने के साथ–साथ जीवाणुओं व केंचुओं की गतिविधियों को बढ़ाता है, खरपतवार को नियंत्रित करता है तथा अंत में विघटित होकर जमीन से कार्बन उत्सर्जन को रोककर भूमि की जैविक कार्बन क्षमता को बढ़ाता है।

ब्रह्मास्त्र : तीन किग्रा. नीम पत्ती को 10 लीटर गौ–मूत्र में मिलायें। दूसरी और 2 किग्रा. कस्टर्ड एपल के पत्ते + 2 किग्रा. पपीता के पत्ते + 2 किग्रा. अनार के पत्ते + 2 किग्रा. अरंडी के पत्ते + 2 किग्रा. अमरूद के पत्ते को पानी में मिलायें। उसके बाद दोनो मिश्रण को मिलाकर थोड़ी–थोड़ी देर के अन्तराल पर (5 बार) तब तक उबालें जब तक कि यह घटकर आधा नहीं रह जाये। 24 घंटे रखने के बाद निचोड़कर छान लेवें। इसे बोतलों में छः माह तक भंडारित किया जा सकता है। 2–2.5 लीटर सत् में 100 लीटर पानी मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव कर दें। यह रस चूसने वाले तथा तना व फल छेदक कीटों के नियंत्रण में लाभकारी है।

अग्निअस्त्र : प्राकृतिक कृषि विधि में फसलों पर कीट एवं बीमारियों के रोकथाम के लिए स्थानीय वनस्पति पर आधारित बेहद सस्ता तथा किसान के खेत में ही बनने वाला आदान है जिसे अग्निअस्त्र कहते है। इसमें 5 किग्रा. नीम या अन्य स्थानीय पौधे के पत्ते जिसे गाय नहीं खाती हो, 20 लीटर देसी गाय का मूत्र, 500 ग्राम तंबाकू पाउडर, 500 ग्राम हरी मिर्च, 50 ग्राम लहसुन का पेस्ट मिलाकर धीमी आंच में उबालना होता है। इसके बाद इसे दो दिनों तक ठंडा होने के लिए रख दिया जाता है। फिर इस घोल का 6 लीटर प्रति 200 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करते है।

नीमास्त्र : 5 किग्रा. नीम की पत्ती, 5 लीटर गौ–मूत्र तथा 2 किग्रा. गाय का गोबर मिलाकर 24 घंटे तक सड़ने दें। थोड़े–थोड़े अंतराल पर इसे हिलाते रहें। सत् को निचोड़.कर छानें तथा 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ क्षेत्र में पर्णीय छिड़काव हेतु प्रयोग करें। इससे चूसने वाले कीटों तथा मिली बग का नियंत्रण किया जा सकता है।

गौमूत्र : एक लीटर गौमूत्र को 20 ली. पानी में मिलाकर पर्णीय छिड़काव से अनेक रोगाणुओं तथा कीटों के प्रबंधन के साथ–साथ फसल वृद्धि नियामक का कार्य भी करता है।

सड़ा हुआ छाछ पानी/मट्ठा : इसका उपयोग फसलों मे कीट–व्याधि के उपचार के लिये लाभप्रद हैं। सब्जी वाली फसलें मिर्ची व टमाटर तथा जिन फसलों में चुर्रामुर्रा या कुकड़ा रोग आता है उसकी रोकथाम हेतु यह एक कारगर उपाय है। इसको बनाने के लिए एक मटके में छाछ डालकर उसका मुँह पोलीथिन से बांध दे एवं 30–45 दिन तक उसे मिट्टी में गाड़ दें। इसके पश्चात् 100–150 मिली. छाछ 15 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करने से कीट–व्याधि का नियंत्रण होता है। यह उपचार सस्ता, सुलभ, लाभकारी होने से कृषकों मे लोकप्रिय है।

दशपर्णी सत् : 5 किग्रा. नीम के पत्ते + 2 किग्रा. निर्गुन्डी के पत्ते + 2 किग्रा. सर्पगंधा के पत्ते + 2 किग्रा. किगुडुची के पत्ते + 2 किग्रा. कस्टर्ड एपल के पत्ते + 2 किग्रा. करंज के पत्ते + 2 किग्रा. अरण्डी के पत्ते + 2 किग्रा. कनेर के पत्ते + 2 किग्रा. देशी आक के पत्ते + 2 किग्रा. हरी मिर्च की लुगदी + 250 ग्राम लहसुन की लुगदी + 5 लीटर गौ–मूत्र + 3 किग्रा. गाय का गोबर को 200 लीटर पानी में कुचलें और एक माह तक सड़ने दें तथा इसे दिन में दो से तीन बार हिलाते रहें। सत् को छानने के बाद 6 माह हेतु भंडारित किया जा सकता है तथा एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव हेतु पर्याप्त है।

राख : एक किग्रा. राख को 10 लीटर पानी में मिलाकर रात भर रखें। उसके उपरांत उसे छानकर उसमें एक लीटर छाछ या मठा मिलायें। इस मिश्रण को तीन गुना पानी में मिलाकर छिड़काव करें। छिड़काव का विपरीत असर पत्तियों पर तो नहीं देखा गया है फिर भी छिड़काव करने से पूर्व एक–दो पौधों पर छिड़काव करके सुनिश्चित कर लें। इसके उपयोग से भभूतियाँ व लाल पत्तियों की समस्या का नियंत्रण संभावित है।

नीम की खली : जमीन में दीमक, सुत्रकृमियों, सफ़ेद लट्ट एवं अन्य कीटों की इल्लियॉ तथा प्यूपा को नष्ट करने तथा भूमि जनित रोग विल्ट आदि के रोकथाम के लिये 1 टन नीम की खली प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेत में डालें।

कृषि रसायनों का प्रभावी प्रयोग

उदिति धाकड, बलदेव राम, शंकर लाल यादव एवं प्रताप सिंह
कृषि महाविद्यालय, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

उन्नत खेती में अधिक उतपादन लेने हेतु रसायनों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। हरित क्रान्ति एवं सिचाई संसाधनो में वृद्धि के परिणामस्वरूप रसायनो का प्रयोग भी बढता चला गया। इन रसायनों में मुख्य रुप से खरपतवारनाशक, फूंदीनाशक एव कीटनाशक प्रमुख है। रसायनों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से वातावरण भी प्रदूषित होता जा रहा है। कई बार इनके गलत प्रयोग से कई दुर्घटनाएं भी घटित हो जाती है। वर्तमान में कृषि के बदलते परिदृश्य में कृषि रसायनो का वैज्ञानिक तरीको से समुचित एवं विवेकपूर्ण प्रयोग अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है। अतः उचित तरीको से सावधानीपूर्वक कृषि रसायनों का प्रयोग करना चाहिये। कृषि रसायनों का प्रभावी छिडकाव हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान अवश्य दें।

1. कृषि रसायन खरीदते समय

- अनुसंशित कृषि रसायन ही काम में ले।
- अच्छी गुणवत्ता का विशवश्नीय स्त्रोत से ही खरीदे।
- रसायन के उपयोग की अंतिम तिथी अवश्य देखे, अवधीपार रसायन नहीं खरीदे अन्यथा नियंत्रण प्रभावी नहीं होगा।
- रसायन का बिल अवश्य प्राप्त करे ।

2. छिडकाव करने से पूर्व

- कृषि रसायन के डिब्बे में दिये गये निर्देशों को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए।
- छिडकाव या भुरकाव यंत्र में थोड़ा पानी डालकर चला कर निश्चित कर लें कि स्प्रेयर ठीक प्रकार कार्य कर रहा है या नहीं । यदि ठीक प्रकार कार्य नहीं कर रहा हो तो उसे मिस्त्री से ठीक करवाकर काम में ले।
- उचित नोजल का चुनाव करे। पुराने,जंग लगे व चौडे छिद्र वाले नोजल काम में न ले । खरपतवारनाशकों के प्रयोग हेतु फ्लेटफेन/फ्लेट जेट तथा फूदीनाशक या कीटनाशकों के प्रयोग हेतु होलो केन नोजल ही काम में ले।
- छिडकाव करने से पूर्व मौसम का हल्का अनुमान अवश्य लगा ले । तेज हवाएं न चल रही हो, घने बादल न हो व बारिस आने की सम्भावना न हो तो छिडकाव करे ।
- खेत पर जाने से पूर्व रसायन की जानकारी डायरी (नोट बुक/कागज) में लिख ले जिनमें रसायन का व्यापारिक नाम, रासायनिक नाम, सान्द्रता, निर्माण दिनॉक, अन्तिम उपयोग दिनाँक, निर्माता व विपणन कर्ता , प्रतिकारक (एन्टीडोट) ।
- खाली पेट स्प्रे नहीं करना चाहिए तथा स्प्रे से पूर्व कुछ खा ले व पानी पी लें।

3. छिडकाव करते समय

- उचित सिफारिसानुसार रसायन मात्रा का प्रयोग करें। रसायन की कम मात्रा लेने से कम असरकारक होगा और यदि ज्यादा मात्रा लेगे तो प्रतिरोधता होने की संम्भावना रहेगी जिससे अगली बार रसायन कम असरकारक होगा तथा अधिक मात्रा में खरपतवारनाशकों के प्रयोग से फसल को नुकसान हो सकता है।
- समुचित मात्रा में पानी प्रयोग में लेवे (500– 700 लीटर प्रति हैक्टर।
- छिडकाव करने की गति लगभग समान रखें। न तो ज्यादा धीरे और न ज्यादा तेज चलें।
- स्प्रे कतारो के समानान्तर करे ताकि दुबारा स्प्रे न हो । खेत में इधर–उघर (जिग–जेग) स्प्रे न करे।
- छिडकाव के बीच–बीच में स्प्रेयर को थोडा हिलाते रहे अथवा प्लास्टिक की छडी से दवाई को मिलाते रहे।
- स्प्रेयर के नोजल एवं पौधों के बीच की उचित दूरी रखे। नोजल न तो ज्यादा नीचे हो और न ज्यादा उपर हो।
- यदि छिडकाव करते समय नोजल में रुकावट आ जाये तो स्प्रेयर को उतारकर आराम से पानी से छिद्र को सुई द्वारा साफ करे । शीघ्रता में मुह से फूॅक न मारे क्योकि कई बार आँखें व नाक में दवाई के छीटे जाने की सम्भावना रहती है व हानि हो सकती है।
- यदि स्प्र करते समय थकान, खुजली,झपकी, आँखें में जलन आदि कोई प्रतिकूल प्रभाव महसूस हो तो शीघ्र स्प्रे करना रोक दे। साबुन से अच्छी तरह हाथ– पैर– मुह घेकर खुली हवा में आराम करे व साफ पानी पिये।
- वायु के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें ताकि रसायन शरीर पर न गिरे।
- छिड़काव के समय बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू या अन्य चीज न खायें व खाली पेट स्प्रे न करें।

4. छिडकाव पश्चात्

- छिडकाव या भुरकाव यंत्रो को अच्छी तरह पानी से साफ करे, नली, नोजल को भी साफ करे।
- रसायनो के खली डिब्बों को तोडकर जमीन में गढढा खेदकर गाढ दे। कदापि इनका प्रयोग अन्य कार्यो हेतु न लेवे।
- यदि रसायन की मात्रा बच जाती है तो बचे हुई दवाई के डिब्बो को अच्छी तरह बन्द कर दे तथा बच्चो एवं जानवरो की पहुॅच से दूर रखें।
- हाथ, पैर, मुॅह को साबुन से अच्छी तरह साफ करें तथा तत्पश्चात स्नान करें। कपडों को अच्छी तरह साबुन से साफ कर धुप में सुखाएॅ।
- यदि किसी प्रकार की कोई शारीरिक परेशानी हो तो शीघ्र पास के अस्पताल में चिकित्सक को दिखाऐं तथा स्प्रे की गई दवाई की सम्पूर्ण जानकारी भी चिकित्सक को अवश्य देवे ताकि चिकित्सा करने में आसानी रहेगी।

बायोगैस : किसानों के लिए ऊर्जा का उत्तम वैकल्पिक स्त्रोत

सुरेन्द्र कुमार, प्रियंका एवं सरिता
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

बायोगैस विभिन्न गैसों का वो मिश्रण हैं जो ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में जैविक सामग्री के विघटन के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं. जिसमें हाइड्रोकार्बन मुख्य घटक के रूप में कार्य करता हैं जो ज्वलनशील होता है जिसके इस्तेमाल से बिजली और ऊष्मा ऊर्जा का निर्माण किया जा सकता है। बायोगैस का उत्पादन जैव रासायनिक क्रिया के माध्यम से होता है जिसमें पशुओं और फसलों के अपशिष्ट का इस्तेमाल किया जाता हैं इन अपशिष्टों में शामिल बैक्टीरिया इसे जैविक रूप में परिवर्तित कर देते हैं जिससे बायोगैस का निर्माण होता हैं।

बायोगैस के मुख्य घटक : बायोगैस में मुख्य घटक के रूप में मीथेन गैस का इस्तेमाल किया जाता हैं। मीथेन गैस के अलावा कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा भी इसमें ज्यादा पाई जाती हैं। इन दोनों गैसों के अलावा हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोजन, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन और अमोनिया जैसी गैसें भी पाई जाती है।

बायोगैस बनाने के लिए आवश्यक तत्व : बायोगैस का निर्माण करना काफी सुविधाजनक होता है। बायोगैस का निर्माण कर किसान भाई अपनी जरूरत की ऊर्जा खुद फ्री में उत्पन्न कर सकता हैं इसको बनाने के लिए कुछ तत्वों की जरूरत होती हैं।

टैंक या डाइजेस्टर : डाइजेस्टर बायोगैस बनाने के लिए महत्वपूर्ण भाग है जो ईट और मसाले से जमीन में गड्ढा खोदकर बनाया जाता है जिसका आकार एक गैस के सिलेंडर की तरह दिखाई देता है. जिसमें बायोगैस के निर्माण की प्रक्रिया होती हैं. इस आवरण में सभी अपशिष्ट पदार्थ भरे होते हैं।

गैस होल्डर : गैस होल्डर का निर्माण स्टील या लोहे की धातु से किया जाता हैं गैस होल्डर टैंक में फिक्स नहीं किया जाता इसे टैंक में उल्टा रखा जाता हैं जिससे ये गैस के दाब के अनुसार ऊपर नीचे होता रहता हैं। गैस होल्डर के सिरे पर एक वाल्व लगा होता है जिसके माध्यम से गैस होल्डर से बाहर निकाली जाती हैं। गैस होल्डर दो प्रकार के होते हैं।

फ्लोटिंग गैस होल्डर : फ्लोटिंग गैस होल्डर वो होता है जो गैस के निर्माण के दौरान खुद अपने आप गैस के दबाव के आधार पर कार्य करता हैं। गैस के बढ़ने की स्थिति में ये ऊपर की तरफ उठ जाता हैं जबकि गैस के कम होने की स्थिति में यह नीचे की तरफ बैठ जाता हैं।

होल्डरफिक्स डोम गैस होल्डर : फिक्स डोम गैस होल्डर का निर्माण टैंक के निर्माण के दौरान स्थाई रूप से किया जाता हैं इसके ऊपरी भाग में गैस एकत्रित होती रहती हैं जिसमे गैस का दाब बीस घन मीटर से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इसका निर्माण करवाते वक्त दाब मीटर जरुर लगा दें ताकि टैंक में मौजूद गैस का पता चलता रहे। वर्तमान में इसका इस्तेमाल नहीं किया जाता हैं।

मिक्सिंग टैंक : मिक्सिंग टैंक का निर्माण अपशिष्टों को टैंक में डालने के लिए किया जाता हैं जिसमें लगी पाइप के माध्यम से अपशिस्ट को डाइजेस्टर में डाला जाता हैं।

ओवरफ्लो टैंक : ओवरफ्लो टैंक का निर्माण टैंक में मौजूद अपशिष्ट को बाहर निकालने और उसका लेवल बनाए रखने के लिए किया जाता हैं।

आउटलेट टैंक : आउटलेट चेम्बर में मौजूद अपशिष्ट को निकालकर सीधा खेतों में डालने के लिए उपयोग में लिया जाता हैं। आउटलेट चेंबर में मौजूद अपशिष्ट सुखा हुआ होता हैं।

गैस वितरण पाइप लाइन : गैस वितरण पाइप लाइन के एक सिरे को गैस होल्डर में लगे वॉल्व से जोड़ा जाता है जबकि इसका दूसरा सिरा स्टोव से जुड़ा होता हैं जिसको चलाने पर उर्जा उत्पन्न होती हैं।

जैविक अपशिष्ट : जैविक अपशिष्ट के रूप में जानवरों का गोबर मुख्य घटक के रूप में कार्य करता हैं। गोबर के अलावा खेती का जैविक कचरा और मुर्गियों की बिट भी मुख्य अपशिष्ट के रूप में काम में लिया जाता है जिसे बाद में आसानी से खेतों में जैव उर्वरक के रूप में खेतों में डाल सकते हैं।

गैस का निर्माण : गैस का निर्माण करने के लिए पशुओं और फसल के जैविक अपशिष्ट को आपस में पानी के साथ मिलाकर टैंक में डाल दिया जाता हैं। बायोगैस निर्माण की प्रकिया दो चरणों में पूर्ण की जाती हैं।

प्रथम चरण : प्रथम चरण को एसिड फॉर्मिंग स्तर कहा जाता हैं। इस चरण में गोबर में मौजूद अमल का निर्माण करने वाले बैक्टीरिया के समूह के द्वारा कचरे में मौजूद बायो डिग्रेडेबल कॉम्प्लेक्स ऑर्गेनिक कंपाउंड को सक्रिय किया जाता है जिसमें प्रमुख उत्पादक के रूप में ऑर्गेनिक अम्ल कार्य करता है इसलिए इसे अम्ल निर्माण स्तर के नाम से भी जाना जाता हैं।

दूसरा चरण : दूसरा चरण मीथेन निर्माण का कार्य करता है जो बायोगैस का मुख्य घटक हैं। इस स्तर में मिथेनोजेनिक बैक्टीरिया को मीथेन गैस के निर्माण के लिए ऑर्गेनिक एसिड के ऊपर सक्रिय किया जाता है जिसे मीथेन गैस का निर्माण होता हैं।

बायोगैस के लाभ

- बायोगैस का सबसे बड़ा लाभ यह पर्यावरण के अनुकूल है। इसके निर्माण से वातावरण में प्रदूषण नहीं फैलता।
- बायोगैस किसान भाई आसानी से घर पर बना सकते हैं इसके टैंक निर्माण के बाद इसमें किसी तरह के खर्च की आवश्यकता नहीं होती इसके लिए आवश्यक अपशिष्ट गावों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर को सुखाकर उसका इस्तेमाल आग जलाने में किया जाता है। जिससे धुआँ काफी ज्यादा मात्रा में निकलता है जबकि बायो गैस के निर्माण करने पर धुँआ से बचा जा सकता हैं।
- साधारण रूप से गोबर गाँवों में खुले में पड़ा होता है जिससे उसमें कई तरह के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं जबकि बायोगैस के निर्माण के बाद मिलने वाला गोबर पूरी तरह खेत में डालने योग्य होता हैं।
- बायोगैस के निर्माण के दौरान इस्तेमाल होने वाला ठोस पदार्थ का लगभग 25 प्रतिशत गैस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जबकि बाकी बचा भाग उत्तम गुणवत्ता के उर्वरक में बदल जाता है. जिसमें पोषक तत्त्वों की उपस्थिति सामान्य खेत में डालने वाली गोबर की खाद से ज्यादा होती है जिससे फसल का उत्पादन भी अच्छा होता है।

ग्लेडियोलस की उन्नत खेती

अशोक चौधरी, आशुतोष मिश्रा, प्रियंका कुमारी जाट एवं राजेश चौधरी
केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़,
महर्षि अरविंद कॉलेज जयपुर, एवं श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

ग्लेडियोलस एक लोकप्रिय कन्दीय पुष्प है जिसका उपयोग भारतवर्ष में बगीचों, सजावट व कट फलावार में किया जाता है। इसकी पत्तियाँ तलवार के समान होती हैं इसलिये इसे तलवार लिलि भी कहते हैं। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर सभी क्षेत्रों में इसकी सफलतापूर्वक खेती की अपार संभावनाएँ हैं। इसके पुष्पों को उचित माध्यम में रखा जाए तो इसके कटे हुए पुष्प 10–15 दिनों तक तरोताजा बने रहते हैं। इन कारणों से इसकी खेती मुख्यतः कृन्तक पुष्प के लिये करते हैं।

जलवायु : इसकी खेती समुद्रतल से लगभग 2500 मीटर की ऊँचाई तक संभव है। ऐसे क्षेत्र जहाँ दिन का तापमान 19–25 डिग्री सेल्सियस और रात का तापमान 15–18 डिग्री सेल्सियस रहता है ग्लेडियोलस की खेती के लिये उपयुक्त होते हैं। इसकी खेती पहाड़ी क्षेत्रों में गर्मियों में व मैदानी क्षेत्रों में प्रायः सर्दियों में करते हैं।

मृदा एवं मृदा की तैयारी : इसकी खेती के लिये उपजाऊ, पर्याप्त जल निकासयुक्त, रेतीली दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. मान 5–7.5 हो, उपयुक्त होती है। चिकनी मिट्टी में कन्दों की समुचित बढ़वार न होने के कारण कार्मल्स कम बनते हैं। जिस भूमि में ग्लेडियोलस की खेती करनी हो उसकी बरसात में 2–3 बार लगभग 20–25 से.मी. गहरी जुताई करनी चाहिये। कन्दों को लगाने से पहले 30–35 दिन पूर्व गोबर की सड़ी खाद 5 किलो/वर्गमीटर की दर से खेत में मिलाकर गहरी जुताई कर खेत को समतल कर आवश्यकतानुसार क्यारी तैयार कर लेते हैं।

निराई–गुड़ाई व मिट्टी चढ़ाना : ग्लेडियोलस की अच्छी उपज लेने के लिये फसल का खरपतवारों से रहित होना आवश्यक है। जब पौधों की ऊँचाई 25–30 से.मी. हो जाए तो कतारों में दोनों ओर से मिट्टी चढानी चाहिये, जिससे पौधे खड़े रह सकें। यह प्रक्रिया 3 सप्ताह बाद दोबारा करनी चाहिये जब तक कि मेड़ की ऊँचाई 15 से.मी. न हो जाये।

सिंचाई : ग्लेडियोलस की फसल की कुल 8–10 सिंचाईयों की जरूरत होती है। फसल की अच्छी बढ़वार के लिये 10–12 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिये किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि खेत में अधिक पानी न लगे अन्यथा कन्दों के सड़ने की सम्भावना होती है। पुष्प डंडिका काटने के बाद जब खेत में कन्द परिपक्व हो जाए और पत्तियाँ पीली पड़ जाएँ तो सिंचाई बन्द कर देनी चाहिये। यदि फसल में ड्रिप सिंचाई पद्धति अपनाई जाती है तो फसल की बढ़वार व फूलों की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है तथा पानी की लगभग 30–40 प्रतिशत की बचत होती है।

फूलों की कटाई : फूलों की कटाई बाजार की परिस्थितियों व प्रजातियों पर निर्भर करती है। यदि फूलों को स्थानीय बाजार में बेचना हो तो पुष्प डंडिका को तब काटते हैं जब सबसे नीचे की पुष्पक का रंग दिखाई देने लगे। यदि फूलों को दूरस्थ बाजार में भेजना हो तो उसे प्रथम पुष्पक के खुलने के पहले ही काट लेना चाहिये। काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कम से कम 4–5 पत्तियाँ पौधे के साथ रहे अन्यथा घनकन्दों की बढ़वार बन्द हो जाती है। फूलों को काटने के पश्चात् उन्हें स्पंदन हेतु 400 पी.पी.एम. 8–हाइड्रो क्वीनालीन साइट्रेट + 30 प्रतिशत सुक्रोज के घोल में 3 घण्टे तक कटे हुए सिरे को रखकर स्पाईकों की जीवन क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

ग्रेडिंग व पैकिंग : फूलों को काटने के बाद पुष्प डंडिकाओं में उपस्थित पुष्पों की न्यूनतम संख्या व डंडिका की लम्बाई अनुसार विभिन्न श्रेणियों में बांट लेते हैं। तत्पश्चात् फूलों के 12 स्पाइकों का बण्डल बनाकर धागे या सूतली से बांध देते हैं। इस तरह के 20–25 बण्डलों को अखबार में

तालिका : ग्लेडियोलस की स्पाइक का श्रेणीकरण

ग्रेड	स्पाईक की लंबाई	पुष्पकों की न्यूनतम संख्या
फैंसी	107 से.मी. से अधिक	16
स्पेशल	96 से.मी. से 107 से.मी. तक	15
स्टैण्डर्ड	81 से.मी. से 96 से.मी. तक	12
युटिलिटी	81 से.मी. से कम	10

लपेट कर 120 x 60 x 30 से.मी. के आकार के गत्ते के डिब्बों में रखकर बाजार में भेजते हैं। इन गत्तों के डिब्बों में हवा के आवागमन हेतु प्रत्येक दिशा में कम से कम 4–5 छिद्रों का होना आवश्यक होता है।

किस्में/प्रजातियाँ :

राजस्थान की जलवायु के लिये उपयुक्त किस्में निम्नलिखित हैं–

पीला – नोवालक्स, जेस्टर, धनवन्तरी
सफेद – व्हाइट प्रास्पर्टी, व्हाइट फ्रेंडशिप, चांदनी

लाल – ट्रेडर हार्न, एडवान्स रेड, पूसा सुहागिन, मयूर
गुलाबी – अमेरिकन ब्युटी, रोज सुप्रीम, फ्रेंडशिप, मेलोडी
नारंगी – हंटिंग सांग, अर्चना, अरूण, वन्दना
भूरा – ब्राउन ब्यूटी, लिटिल टाइगर, चाकलेट चिप
बैंगनी – चाइना ब्लू, ब्लूबर्ड

प्रवर्धन : ग्लेडियोलस के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधि कन्द (कार्म) घनकन्द (कार्मेल्स) एवं उत्तक संवर्धन है।

कन्द रोपण का समय : मैदानी क्षेत्रों में कन्द बोने का सर्वोत्तम समय सितम्बर–अक्टूबर है। व्यावसायिक पुष्पोत्पादन हेतु कन्दों को अगस्त से नवम्बर तक 15 दिनों के अन्तराल में विभिन्न प्रजातियों को लगाकर अधिक दिनों तक पुष्प डंडिका प्राप्त कर सकते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च से जून तक कन्दों को लगाकर, जून से अक्टूबर तक पुष्प डंडिका प्राप्त करते हैं।

कन्दों को लगाने की विधि : व्यावसायिक खेती हेतु उत्तम प्रजातियों के रोगरहित स्वस्थ कन्दों को जिनका आकार 4–5 से.मी. व्यास हो, चयन करते हैं। कन्दों को लगाने से पहले कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/लीटर) व मेन्कोजेब (2 ग्राम/लीटर) के मिश्रण से 1/2 घण्टे तक उपचारित कर छायादार स्थान में सुखा देते हैं। साधारणतया पंक्ति से पंक्ति की दूरी 40 से.मी. व कन्द से कन्द की दूरी 20 से.मी. रखते हैं। परन्तु सघन खेती हेतु पंक्ति से पंक्ति 25 से.मी. व कन्द से कन्द की दूरी 10–15 से.मी. रखते हैं। कन्द रोपने की गहराई, कन्द के आकार पर निर्भर करती है। साधारणतया 5–6 से.मी. आकार वाले कन्दों को 8–10 से.मी. में रोपते हैं।

खाद एवं उर्वरक : ग्लेडियोलस की अच्छी खेती के लिये गोबर की सड़ी खाद 5–6 किग्रा/वर्गमीटर की दर से खेत की तैयारी के समय लगभग 30 दिन पहले भूमि में मिलाते हैं। इसके अतिरिक्त 75 किलो नत्रजन 150 किग्रा फॉस्फोरस व 120 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से कन्दों को बुवाई के समय खेत में डालते हैं। नत्रजन की शेष मात्रा (75 किलोग्राम) टॉप ड्रेसिंग के रूप में खड़ी फसल में तब देनी चाहिये जब पौधों पर 5–6 पत्तियाँ लग जाएं या फसल लगभग 45 दिनों की हो जाये। बुवाई के एक माह पश्चात 0.2 प्रतिशत यूरिया के घोल को खड़ी फसल पर छिड़कने से फूल जल्दी प्राप्त होते हैं।

रोग एवं कीट नियंत्रण

- **कन्द विगलन/फ्यूजेरियम विल्ट :** यह ग्लेडियोलस की मुख्य बीमारी है। इसके प्रभावित पौधों के तने टेड़े–मेड़े हो जाते हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। फलस्वरूप कन्द सड़ जाते हैं। यह रोग कन्दों को खेतों तथा गोदामों दोनों में समान रूप से प्रभावित करता है।

  रोकथाम : इसकी रोकथाम के लिये कन्दों को बोने से पूर्व 0.2 प्रतिशत बेविस्टिन या बेलनेट के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करना चाहिये। प्रत्येक वर्ष फसल अलग–अलग खेत में लगानी चाहिये।

- **साफ्ट रोट :** यह बीमारी मुख्यतः अनुपचारित कन्दों में गोदामों में होती है जब कन्दों को 12–15 डिग्री सेल्सियस से नीचे तापमान पर रखा जाता है। खेंतों में पत्तियो के नीचे भूरे धब्बे बन जाते हैं।

  रोकथाम : इसकी रोकथाम के लिये डाइथेन एम–45 पाउडर से कन्दों को उपचारित कर गोदामों में रखना चाहिये या 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम–45 के घोल को 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़कना चाहिये।

- **माहू :** इसके रोकथाम हेतु 2 प्रतिशत मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान का छिड़काव करना चाहिये।

- **सफेद सुण्डी :** इसकी रोकथाम हेतु बुवाई के समय खेतों में सिमेंट 10 ग्राम का प्रयोग करना चाहिये।

- **दीमक :** सिंचाई के पानी के साथ क्लोरापाइरीफॉस का प्रयोग करना चाहिये।

कंदो व घनकंदों की खुदाई : बुवाई के 6–7 माह पश्चात् जब पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगे तब कन्दों की खुदाई प्रारम्भ कर देनी चाहिये। खुदाई के बाद कन्दों व घनकन्दों को अलग–अलग छाया में 2–3 दिनों तक सुखाते हैं जिससे कि मिट्टी पूरी तरह से अलग हो जाए। सुखाने के पश्चात् इन कन्दों व घनकन्दों को बाविस्टीन 1 ग्राम/लीटर तथा डाइथेन एम.45 2 ग्राम/लीटर के घोल में 1/2 घण्टे तक उपचारित कर छाया में सुखा लेते हैं। तत्पश्चात् इन कन्दों को टाट या नाइलोन के बैग में भरकर 3–4 माह के लिये शीत भण्डारण में रखते हैं।

उपज : ग्लेडियोलस का उत्पादन प्रति एकड़ लगाए गए कंदों पर निर्भर करता है। एक एकड़ में लगभग 65–70 हजार पुष्प डंडिका प्राप्त होती है। इसी तरह एक कंद से एक या कभी–कभी 2 बुवाई योग्य कंद प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 90000–100000 कार्मेल्स/एकड़ प्राप्त होते हैं।

गेंदे की खेती - एक लाभकारी व्यवसाय

रिषिका चौधरी
के.एन.के. उद्यानिकी महाविद्यालय, मंदसौर, मध्यप्रदेश

गेंदे के फूल को अंग्रेजी में ''मेरीगोल्ड'' कहते हैं तथा इसका वानस्पतिक नाम ''टेगेट्स'' है। गेंदे के फूल को सबसे पहले पुर्तगालियों ने अमेरिका में 16वीं शताब्दी में खोजा था। इस फूल का इतिहास मैक्सिको के साथ माना जाता है इसके बाद गेंदे के पौधे को स्पेन ले जाया गया और पूरे यूरोप में गेंदे की खेती होने लगी। स्पेन में जाने के बाद गेंदे के फूल को चर्च में होने वाली शादियों में ले जाया जाने लगा जिससे की इसका नाम ''मरीज गोल्ड'' हो गया। और धीरे–धीरे इसका नाम बदल कर ''मेरीगोल्ड'' कर दिया गया। गेंदे के फूल को मारवाड़ी में ''हजारी गजरा'' और गुजराती में ''गालगोटा'' के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा गेंदे के फूल को ''जेंदू फ्लॉवर'' के नाम से भी जाना जाता है।

गेंदा विश्व तथा भारत में उगाये जाने वाले महत्पूर्ण फूलों में से एक है। भारत की अर्थव्यवस्था में फूलों की खेती का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है तथा गेंदा खुले फूलों की श्रेणी में सर्वोतम स्थान पर आता है। भारत में मुख्य रूप से अफ्रीकन गेंदा और फ्रेंच गेंदा की खेती की जाती है। गेंदे के फूल को भारत में सबसे ज्यादा उगाये जाने वाले फूलों की श्रेणी में रखा जाता है यह मुख्य रूप से सजावटी फसल है और इसके फूलों का उपयोग ज्यादातर पूजा–पाठ, घर की सजावट के लिए किया जाता है। यह खुले फूल, माला एवं भूदृश्य के लिए उगाया जाता है। इसके फूल बाजार में खुले एवं मालाऐं बनाकर बेचे जाते हैं। गेंदे की विभिन्न ऊँचाई एवं विभिन्न रंगों की छायाँ के कारण भू–दृश्य की सुंदरता बढ़ाने में इसका बड़ा महत्व है। साथ ही यह शादी–विवाह में मण्डप सजाने में भी अह्म भूमिका निभात है। यह क्यारियों एवं हरबेसियस बॉर्डर के लिए अति उपयुक्त पौधा है। मुर्गियों के दाने में भी यह पीले वर्णक का अच्छा स्रोत है। गेंदा औषधीय गुणों से भी भरपूर होता है। गेंदा स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद माना जाता है। इसके फूलों में कई ऐसे तत्व पाए जाते हैं जो कई बीमारियों में लाभदायक साबित होते हैं। गेंदा में एंटी फंगल, एंटी एलर्जिक और एंटी ऑक्सीडेंट्स जैसे गुण पाए जाते हैं।

इस पौधे का अलंकृत मूल्य अधिक है क्योंकि इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है। गेंदे के फूल गर्मियां आने से पहले खिलते हैं। इन फूलों में एक तीखी गंध होती है जो कि बहुत सुगंधित होती है। गेंदे के फूलों का आकार गोल होता है, इसके अंदर बहुत सारी पंखुड़िया होती है, जब फूल पक जाता है, तो इन्हीं को मिट्टी में लगाकर इससे गेंदे का पौधा तैयार किया जाता है। इसके फूल कई रंग के होते हैं, जिनमें नारंगी, मेरून, सफेद या कभी–कभी लाल और पीले दो रंग के भी पाए जाते हैं। द्विस्तरीय बागवानी प्रणाली में भी फल वृक्षों के साथ गेंदे को उगाकर अधिक मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है। गेंदे के फूलों का बाजार भाव कम होने पर किसान फूलों से बीज उत्पादन कर तथा फूलों को सीधे प्रसंस्करण उद्योगों में भी बेचकर अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं।

जलवायु: यह पौधा धूप एवं गर्म जलवायु को ज्यादा पसंद करता है। जिन इलाकों में रात के समय ज्यादा ठण्ड नहीं पड़ती है वहां पर गेंदे के पौधे पूरी साल भर खिलते हैं। पौधे को सुखद जलवायु के लिए लगभग 15–20 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। अगर तापमान इससे ज्यादा होता है तो यह पौधे की वृद्धि पर प्रभाव डालता है जिसकी वजह से गेंदे के फूल के आकार और संख्या में कमी आने लगती है। अगर गेंदें के पौधे को उत्तर भारत में उगने के लिए मौसम की बात की जाए तो यह सर्दियों के महीनों से लेकर शुरूआती गर्मियों तक अच्छे से चलते हैं। यानी की अक्टूबर से अप्रैल के महीनों में उत्तर भारत में गेंदे के फूलों की सबसे ज्यादा पैदावार देखी जा सकती है। गर्मियों में फसल लेने के लिए इसकी बुवाई जनवरी–फरवरी माह, सर्दियों के लिए सितम्बर माह व वर्शा ऋतु के लिए जून माह में करनी चाहिए।

गेंदे की प्रजातियाँ: गेंदे के फूलों का आकार प्रजाति के अनुसार अलग–अलग होता हे। कुछ प्रजातियों में यह एक ही आकार के थोड़े छोटे पाए जाते हैं। और कुछ प्रजातियों में इन फूलों का आकार काफी बड़ा होता है। गेंदे के पौधे के आकार की बात करें तो इसके पौधे का आकार सामान्य तौर पर एक फिट से लेकर पांच फिट तक जा सकते हैं लेकिन इसके कुछ पौधे जमीन पर ही फैलते हैं। इसके पौधों पर अक्टूबर से नवम्बर के बीच में फूल ज्यादा लगते हैं। गेंदे की पत्तियों का आकार छोटा और लम्बा होता

है, जो कि 2 सेंटीमीटर की होती है। इन पत्तियों के अंदर से बहुत अच्छी सुगंध भी आती है। गेंदे में कई प्रकार की प्रजातियाँ पायी जाती है जिनमें से दो प्रजातियां फ्रेंच (टैगेट्स पटुला) मैरिगोल्ड और अफ्रीकी (टैगेट इरेक्टा) सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। गेंदे के प्रमुख प्रजातियों का विवरण निम्न प्रकार है।

1. **फ्रेंच मेरीगोल्ड :** इस प्रजाति के फूलों का रंग लाल, पीला और नारंगी होता है। इसके फूल थोड़े छोटे होते हैं जिनका आकार लगभग दो इंच होता है तथा इसके पौधे भी ज्यादा बड़े नहीं होते हैं। पौधों का आकार लगभग दस से बीस इंच के बीच होता है।

किस्में

रस्टी रेड, बटरस्कॉच, बटर बॉल, फायरग्लो, रेड ब्रोक्रार्ड, सुसाना फ्लेमिंग, फायर डबल, स्टार ऑफ इंडिया इत्यादि।

2. **अफ्रीकन मेरीगोल्ड :** इस प्रजाति के फूलों का आकार बड़ा होता है जिनका आकार लगभग पांच इंच तक का हो सकता है। यह फूल नारंगी रंग से पीले रंग की ओर खिलते हैं तथा इसके पौधों का आकार भी अन्य पौधों से बड़ा होता है। यह लगभग चार फिट की ऊंचाई तक जा सकते हैं।

किस्में

क्राउन ऑफ गोल्ड, येलो सुप्रीम, जाईट डबल अफ्रीकन, नारंगी जाइंट, डबल पीला, क्रेकर जेक, गोल्डन एज कलकतिया आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पूसा नांरगी गेंदा, पूसा बसंती गेंदा नाम की दो नई जातियां भी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा निकाली गई है।

3. **सिग्नेट मेरीगोल्ड :** इस प्रजाति के फूलों का रंग पीला और नारंगी होता है, इनके अंदर से नींबू की तरह सुगंध आती है। इसमें फूल छोटे–छोटे समूह में लगते हैं।

बीज दर

एक हैक्टेयर के लिए सामान्य तौर पर 1.5 किलो बीज, जबकि संकर प्रजातियों का प्रयोग करने पर 700–800 ग्राम प्रति हैक्टेयर बीज पर्याप्त रहता है। बुवाई हेतु उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का प्रयोग करना चाहिए पुराने बीजों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नर्सरी प्रबंधन

मौसम के अनुसार बीज को 8–10 से.मी ऊंची उठी हुई, 1 मीटर चौड़ी व आवश्यकतानुसार 2–3 मीटर लम्बी क्यारियों में बुवाई करनी चाहिए। अंतिम जुताई के बाद भुरभुरी तैयार क्यारी को 1:50 (फार्मलीन व पानी) से उपचारित करे बीजों को लाईन में या छिड़कवां विधि से बुवाई करके गोबर की खाद से ढंककर झारे से पानी देते रहें। नर्सरी में अच्छे जमाव के लिए वांछित नमी का रहना बहुत जरूरी है तथा अधिक जल–भराव नहीं होना चाहिए।

भूमि व उसकी तैयारी

गेंदे की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है परन्तु बेहतर पैदावार के लिए बलुई दोमट मिट्टी उत्तम मानी जाती है जिसका पी.एच. 7.0 से 7.5 हो और अच्छे जल निकास वाली हो। साथ ही मिट्टी पलटने वाले हल से तीन–चार जुताईयां करके पाटा लगाकर भुरभुरी करके छोड़ दें। अंतिम जुताई के समय सिफारिश अनुसार सड़ी गोबर की खाद डालकर मिला दें साथ ही, दीमक व अन्य कीटों से बचाव हेतु 4–5 क्विंटल नीम की खली डालकर मिला दें। पौधों को खेत में रोपण से पूर्व खेत को छोटी–छोटी क्यारियों में बांट लें जिससे सिंचाई आदि कार्यो में आसानी रहे।

खाद एवं उर्वरक

खेत की जुताई से 10–15 दिन पहले 150 से 200 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर खेत में डाल देना चाहिए साथ ही 160 किलो नाइट्रोजन, 80 किलों फॉस्फोरस व 80 किलो पोटाश की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के पहले आखिरी जुताई के समय भूमि में मिला देनी चाहिए। शेष बची नाइट्रोजन की मात्रा का लगभग एक महिने के बाद खड़ी फसल में छिड़काव कर देना चाहिए।

पौध की रोपाई

जब पौध लगभग 30–35 दिन की या 4–5 पत्तियों की हो जाए, तब उसकी रोपाई कर देनी चाहिए। रोपाई में पौधे से पौधे की दूरी 30–35 सेंटीमीटर व लाईन से लाईन की दूरी 45 सेंटीमीटर होनी चाहिए। रोपाई

हमेशा शाम के समय करनी चाहिए व रोपाई के बाद पौधों के चारों ओर भी मिट्टी को हाथ से दबा देना चाहिए तथा रोपाई के तुरंत बाद हल्की संचाई जरूरी है।

सिंचाई

गर्मियों में 4–5 दिनों के अंतराल पर व सर्दियों में 10–12 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। अच्छे उत्पादन के लिए उपयुक्त नमी का रहना अति आवश्यक होता है।

अन्य क्रियाऐं

रोपण के बाद खेत में समय–समय पर खुर्पी की सहायता से खरपतवारों को निकालते रहें। पौधों में अधिक शाखाओं के विकास हेतु रोपण के बाद कटाई–छंटाई करते रहें। पुश्प आते समय पौधों के पास मिट्टी चढ़ा दें, जिससे अधिक शाखाऐं निकलें। निराई–गुड़ाई का पौधों की आरम्भिक अवस्था में विशेष महत्व है। गेंदे में प्रथम गुड़ाई रोपण के 20–25 दिन बाद तथा द्वितिय गुड़ाई 40–45 दिन बाद करनी चाहिए।

शीर्षकर्तन

जब गेंदे की फसल लगभग 45 दिन की हो जाए तो पौधे की शीर्ष कलिका को 2–3 सेंटीमीटर काटकर निकाल देना चाहिए। इससे पौधें में अधिक कलियों का विकास होता है और अधिक फूल प्राप्त होते हैं।

फलों की तुड़ाई

फूलों को तोड़ने से पहले खेत में हल्की सिंचाई करें, जिससे फूलों का ताजापन बना रहे। फूलों की तुड़ाई अच्छी तरह से खिलने के बाद ही करना चाहिए तथा फूल तोड़ने का श्रेष्ठ समय सुबह या शाम का होता है।

उपज

अफ्रीकन गेंदा से 18–20 टन तथा फ्रेंच गेंदा से 10–12 टन प्रति हैक्टर औसतन फूलों की उपज प्राप्त होती है, जो लगाये गये मौसम व कल्चरल क्रियाओं के अनुसार कम–ज्यादा भी प्राप्त हो सकती है।

पौध संरक्षण

रेड स्पाईडर माईट : इनका आक्रमण फूलों के खिलने के समय होता है। इसकी रोकथाम के लिए मोनोक्रोटॉफॉस दवा की 1.5 मि.ली. मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार छिड़काव को 10–15 दिन में दोहरायें।

हेयरी केटरपिलर

यह इल्ली गेंदे की पत्तियों को खाकर क्षति पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के लिए डाइमिथोएट दवा की 1.0 मि.ली. मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

डैम्पिंग ऑफ

यह व्याधि पौधशाला में छोटे–छोटे पौधों को अधिक नुकसान पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के लिए मैंकोजेब दवा की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। रोग के प्रकोप के अनुसार आवश्यक हो तो 15 दिन में पुनः छिड़काव करें।

पाउडरी मिल्ड्यू

इस रोग में पत्तियों पर पाउडरनुमा सफेद दिखाई पड़ता है तथा क्षति पहुँचती है। इसकी रोकथाम के लिए सल्फर पाउडर का भुरकाव करें एवं केलक्सीन 1 मिलीलीटर या केराथेन 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

फ्लावर बड़ सड़न

इसमें कलियां भूरे रंग की हो कर सड़ने लगती हैं। इसकी रोकथाम के लिए मैंकोजेब दवा 2–3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

अतः गेंदा एक बहुउद्देशीय फसल है तथा इसमें उन्नत तकनीक अपनाकर किसान इसकी खेती को एक लाभकारी व्यवसाय के रूप स्थापित कर सकते हैं।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग की विधि एवं लाभ

डी.एल. यादव एवं प्रताप सिंह
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, अनुसंधान निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

परिचय : ट्राइकोडर्मा मुख्यतः एक जैव कवकनाशी है, यह रोग उत्पन्न करने वाले कवकों जैसे–फ्यूजेरियम, मेक्रोफॉमिना, स्क्लेरोशियम, स्क्लेरोटिनिया, पीथियम राइजोक्टोनिया इत्यादि मृदोप एवं बीज जनित रोगकारकों की वृद्धि को रोककर अथवा उन्हें मारकर पौधों में उनसे होने वाले रोगों से सुरक्षा प्रदान करता है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग की विधि

1. **बीजोपचार:** बीजोपचार के लिए प्रति किलो बीज में 5–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर (टॉल्क फॉर्मूलेशन) 2×26 सीएफयू बीजदर प्रति 2 ग्राम को मिश्रित कर छायाँ में सुखा लें, फिर बुवाई करें।

2. **बीज प्राइमिंग:** बीज बोने से पहले खास तरीके के घोल की बीजों पर परत चढ़ाकर छायाँ में सुखाने की क्रिया को बीज बायो प्राइमिंग कहा जाता है। ट्राइकोडर्मा से प्राइमिंग करने हेतु 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर की स्लरी बनाए। और इसमें लगभग 1 किग्रा बीज डुबोकर रखें। इसे बाहर निकाल कर छायाँ में सूखने दें फिर बुवाई करें।

3. **कन्द उपचार:** 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति लीटर पानी में डालकर घोल बना लें फिर इस घोल में कन्द को 15–20 मिनट तक डुबोकर उपचार करें। इसे छायाँ में 30 मिनट सूखने के बाद बुवाई करें।

4. **मृदा शोधन:** 1 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा को 100 किलोग्राम कम्पोस्ट (गोबर की सड़ी खाद) में मिलाकर एक सप्ताह तक छायाँदार स्थान पर रखकर उसमें गीले बोरे से ढके ताकि इसके बीजाणु अंकुरित हो जाए। इस कम्पोस्ट को 1 एकड़ खेत में फैलाकर मिट्टी से मिला दें फिर बुवाई करें।

5. **नर्सरी उपचार:** बुवाई से पहले 8–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति लीटर पानी में घोलकर नर्सरी बेड को भिगायें।

6. **कलम एवं अंकुर पौध की जड़ उपचार:** 1 लीटर पानी में 8–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर घोल लें और कलम एवं अंकुर पौधों की जड़ों में 10 मिनट के लिए घोल में डूबोकर रखें फिर रोपण करें।

ट्राइकोडर्मा की कार्य विधि

- ट्राइकोडर्मा लगभग सभी प्रकार की कषि योग्य भूमि में पाया जाता है।
- ट्राइकोडर्मा मुख्यतः दो प्रकार से रोगकारकों की वृद्धि को रोकता है।
- विभिन्न प्रकार के रसायनों का संश्लेषण एवं उत्सर्जन करके जिनमें विशेष एंजाइम जैसे – काइटिनेज, बीटा–1,3, ग्लूकानेज द्वारा रोगकारक कवक भी बाहरी परत को नष्ट कर देता है।
- ट्राइकोडर्मा रोगकारकों पर सीधा आक्रमण कर इस पर होस्टोरिया द्वारा परोपजीवी के रूप में अपना सारा भोजन प्राप्त करता है, जिससे रोगकारक कवक की वृद्धि रूक जाती है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से लाभ

- यह रोगकारक कवकों की वृद्धि को रोकता है।
- यह पौधों में रोगकारकों के विरूद्ध तंत्रगत अधिग्रहित प्रतिरोधक क्षमता की क्रिया विधि को सक्रिय करता है।
- यह मृदा में कार्बनिक पदार्थो के अपघटन की दर बढ़ाता है।
- यह पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है क्योंकि यह फॉस्फेट पोषक तत्व को घुलनशील बनाता है।
- यह दूषित मृदा के जैविक उपचार (बायो–रिमेडिएशन) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग में सावधानियाँ

- ट्राइकोडर्मा उत्पाद को उचित एवं प्रमाणित संस्था अथवा कम्पनी से ही खरीदें।
- उत्पाद 6 महिने से ज्यादा पुराना न हो।
- बीज एवं पौध उपचार का कार्य छायाँदार एवं सुरक्षित स्थान पर करें।
- ट्राइकोडर्मा के साथ अन्य कवकनाशी रसायनों का प्रयोग न करें।
- ट्राइकोडर्मा के प्रयोग के 4–5 दिनों तक रसायनिक कवकनाशी का प्रयोग ना करें।
- सूखी मिट्टी में ट्राइकोडर्मा का प्रयोग न करें, इसके विकास के लिए नमी अनिवार्य है।
- ट्राइकोडर्मा उत्पाद को अधिक दिन तक रखने के लिए शुष्क एवं ठण्डे स्थान का चुनाव करें।

शुद्ध घी बनाइए : मिलावट पहचानिए

शकुन्तला गुप्ता एवं सौरभ माहेश्वरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, नगीना (बिजनौर) एवं गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

घी भारत का सबसे अधिक प्रचलित डेरी उत्पाद है। उच्च पोषक तत्वों तथा सुगन्ध से भरपूर होने के कारण दैनिक आहार में घी का प्रमुख स्थान है। संस्कृत में घी को घृत, घवि, अमृत और जीवन आदि अनेक नाम है। फारसी में इसे रोगने–ए–जर्द कहते हैं। आयुर्वेद में घी का विशेष महत्व है। जैसे– कमजोर व्यक्तियों को सर्दी के मौसम में घी खाने के लिए कहा जाता है। हमारे देश में कुल दुग्ध उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत भाग घी बनाने के काम में लाया जाता है। गाय के घी में 100 प्रतिशत वसा, 900 कि0कैलोरी तथा 2000 माइक्रोग्राम कैरोटीन, भैंस के दूध में 100 प्रतिशत वसा, 900 कि.कैलोरी व 400 माइक्रोग्राम कैरोटीन पाया जाता है।

घी बनाना : घी बनाने की तीन विधियाँ हैं, जो इस प्रकार है

1. **देशी विधि :** इस विधि में दूध का दही जमा दिया जाता है दूसरे दिन दही को मथनी से मथकर, मक्खन निकाल लेते है। मथने पर काफी मात्रा में छाछ/मट्ठे और चिकनाई ऊपर आ जाती है। चिकनाई को ठंडे जल से धोकर छाछ से अलग पकाते है। पकाते समय पानी काफी मात्रा में भाप बनकर उड़ जाता है तथा प्रोटीन के छोटे–छोटे टुकड़ों में फटने लगता है। तथा चिकनाई से अलग होने लगता है, इस अवस्था में उसे चलाते रहना चाहिए। जब दूध की प्रोटीन के कण बर्तन की तली में लग जायें तब मलमल के कपड़े में छान लें। घी को चौड़े मुँह वाले बर्तन में भरकर रखें।

2. **मक्खन से घी तैयार करना :** इसमें मक्खन को धीरे–धीरे आग पर गर्म करते हैं और किसी कलछी की सहायता से उसे चलाते रहे तथा समान रूप से पकायें। जब घी के चटकने की आवाज बंद हो जाये तो इसे आग से उतारकर तथा निथारकर व छानकर घी तैयार कर लेते हैं।

3. **क्रीम से घी बनाना :** चिकनाई की कम से कम हानि हो, घी का टिकाऊपन अधिक हो और उसका स्वाद, रूप और गठन भी काफी समय तक अच्छा बना रहे तो इस प्रकार का घी बनाने के लिए क्रीम निकालने की मशीन (क्रीम सेपरेटर) बहुत उपयोगी है। दूध से क्रीम निकालकर गर्मियों में 24 घण्टे व जाडों में 40–45 घण्टे के लिए रख देते है। क्रीम को आग पर धीरे–धीरे गर्म करते हैं जब उबलने के बाद तथा चटकना बंद हो जाने पर घी में से सुहावनी सुगन्ध निकलने लगे तब घी को आग से उतार तथा छानकर एल्यूमिनियम या स्टेनलेस के बर्तन में रखना चाहिए।

घी में मिलावट की पहचान करना : उत्तम स्वास्थ्य के लिए शुद्ध घी का प्रयोग आवश्यक है। आजकल घी में काफी मिलावट की जा रही है जिसके कारण शुद्ध घी मिलना कठिन हो गया है। मिलावटी घी को ही शुद्ध घी के भाव पर बेचा जाता है। इसलिए घी में मिलावट का पता लगाना बहुत जरूरी है।

घी में मिलाये जाने वाले पदार्थ : घी में बहुधा डालडा, पशुओं की चर्बी, महुआ का तेल, मूंगफली का तेल, बिनौले का तेल, गिरी का तेल आदि पदार्थ मिलावट करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं। कभी–कभी कुछ लोग स्टार्च तथा शकरकन्द को भी घी में मिला दिया करते हैं। घी में मिलावट का पता निम्न विधियों के द्वारा लगाया जा सकता है।

1. **संवेदी परीक्षण :** घी का रूप, गठन और स्वाद देखकर मिलावट का पता लगाया जा सकता है। लेकिन इस तरह मिलावट का सही पता नहीं लग पाता है।

2. **घी में वनस्पति घी की मिलावट :** डालडा घी में सूक्ष्म मात्रा में निकेल मौजूद रहता है। घी के मिश्रण में निकेल की उपस्थिति जानने के लिए कांच की परखनली में 5 ग्राम घी तथा 5 मिली लीटर गाढा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाकर गर्म करें। गर्म करने के बाद पोर्सलीन की प्याली में रखकर सुखा लें। बचे हुए पदार्थ को गर्म

करें फिर ठण्डा करके 2 मिलीलीटर एल्कोहल का घोल मिलाते है। इसके बाद अमोनिया हाइड्रॉक्साइड का गाढा घोल में डालकर क्षारीय कर लेते हैं। यदि घी का लाल रंग आ जाये तब समझना चाहिए कि डालडा वनस्पति का मिश्रण है।

3. घी में चर्बी की मिलावट

- **अम्ल परीक्षण :** एक परखनली में 1 : 10 के अनुपात में घी तथा कार्बोलिक अम्ल मिलाकर परखनली को स्टैण्ड में रख दें इस प्रकार चर्बी अघुलनशील होने के कारण परखनली में मिश्रण की ऊपरी सतह पर आ जायेगी तथा शुद्ध घी का भाग अम्ल में घुल जायेगा।

- **बैलेन्टा परीक्षण :** एक परखनली में एक परखनली में 3 मि.ली. ग्लेसियल एसिटिक एसिड तथा घी मिलाकर गर्म करके रख दें तथा बार–बार परखनली में घी पिघलता देखते रहे। घी पिघलने लगे तो समझना चाहिए कि घी शुद्ध है, यदि घी न पिघले तो चर्बीयुक्त है।

4. घी में वनस्पति तेल की मिलावट

- **वलय परीक्षण :** बी.एन. घोष के अनुसार एक परखनली में एक भाग वनस्पति तेल तथा घी के मिश्रण में 4 भाग क्लोरोफार्म मिलाकर यदि इसें फास्फोमाल्विडिक अम्ल की कुछ बूंदे डालकर हिलायें। कुछ देर के लिए इस मिश्रण को स्थिर होने के लिए एक स्टैण्ड पर रख दें। तो दोनों द्रवों के मिलने के स्थान पर एक हरी सी रिंग बन जाती है तो घी अशुद्ध है, रिंग न बनने की स्थिति में घी शुद्ध होगा।

- **हाफेन परीक्षण :** शुद्ध घी में यदि बिनौले के तेल की मिलावट की जाती है तो मिलावट को जानने के लिए कार्बन डाई सल्फाइट के घोल में बराबर भाग में एमाइल एल्कोहल तथा घी मिलाते हैं, इसे गर्म किया जाता है यदि घी में बिनौले के तेल का मिश्रण हो तो परखनली में रखे द्रव का रंग लाल दिखाई देने लगता है अन्यथा नहीं।

घी का घरेलू स्तर पर परीक्षण

1. कांच के बर्तन में थोड़ा से सरसों के तेल में एक चम्मच घी मिलाते है यदि उसमें डालडा की मिलावट होगी तो तेल ऊपर तैरता रहेगा तथा शुद्ध घी पैंदी में बैठ जायेगा।

2. एक शीशे के बर्तन में थोड़ा सा घी लेकर उसमें गन्धक के तेजाब की कुछ बूँदें डालते हैं। यदि घी शुद्ध है तो मिश्रण का रंग गुलाबी कुछ कालापन लिये हुए दिखाई देगा।

3. मिट्टी के कच्चे घड़े पर या खपरैल के टुकड़े पर थोड़ा सा घी रगड़ देते हैं, कुछ समय बाद देखने पर उस स्थान पर खड़िया जैसी सफेदी जमी हुई दिखाई दे तो समझना चाहिए कि उस घी में मिलावट है अन्यथा नहीं।

प्रत्येक उपभोक्ता विशेषकर गृहिणियों को मिलावटी पदार्थो से बचने हेतु जागरूक होना चाहिए। गृहणियों को यदि घी में मिलावट का शक होने पर घरेलू विधि से परीक्षण करना चाहिए। मिलावट होने पर स्थनीय स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों को सूचित करना चाहिए ताकि मिलावट करने वाले व्यक्तियों को उपयुक्त दण्ड दिया जा सके तथा मिलावट से बचने के लिए घी घर पर ही तैयार करना चाहिए।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	**जून**	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	**सितम्बर**	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	**दिसम्बर**	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	**मार्च**	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण